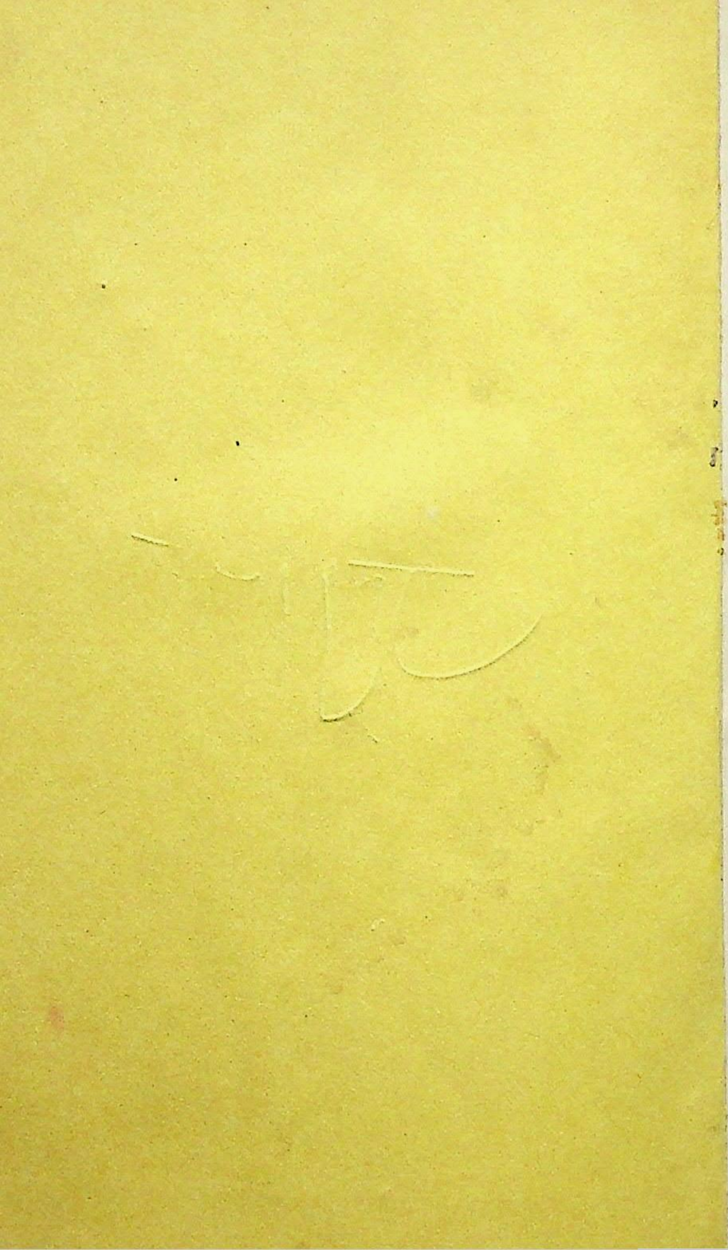
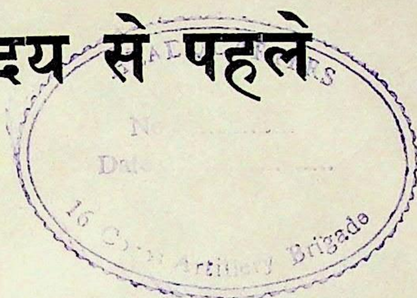


Jagjit



सूर्योदय से पहले



आशीष सिन्हा

अरुण प्रकाशन, नई दिल्ली-24

प्रकाशक :
अरुण प्रकाशन
ए-47, अमर कालोनी,
लाजपतनगर, नई दिल्ली-110024

प्रथम संस्करण : 1985 मूल्य : पच्चीस रुपये मात्र

मुद्रक :
एस० एन० प्रिंटर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110024

श्रद्धेय हितेन्द्रनारायण घोष के लिए

एक

"उई···गुदगुदी लगे है ''

"लगने दे री···"

"ऊँ ऊहूँ '' झालो मछली की तरह छटपटाती है। चिरंजी की बाँहें उस अकुलाहट को जैसे सीने में भर लेना चाहता है। वह जवाब कुछ नहीं देता। एक दबी साँस सीने से निकलकर झालो के नथुनों से टकराती है··

"छोड़ेगा नहीं?"

"नाही ' चिरंजी हँसता है।

"तो छलाँग लगा दूँगी गंगा मईया की गोद में '' झालो इठलाती है।

"लगा के तो देख री छमिया," चिरंजी एक हाथ से पतवार सँभालते हुए कहता है—"निकाल के लय आऊँगा गंगा मईया की गोद से···"

झालो की अकुलाहट अब खिलखिलाहट में बदल जाती है। कौन समझाए चिरंजी माँझी को! समझाना-बुझाना बेकार इस बावले को। नहीं तो रात को नाव लेकर मछली पकड़ने के बहाने कोई घूमने निकलता है? भले ही चाँदनी रात क्यों न हो!

"अब घर चल माँझी···," झालो चिरंजी के सीने पर अधलेटी-सी बोलती है—"बापू को नाव का इन्तजार होगा · ''

"अभी नाहीं···," चिरंजी जवान झालो के गर्दन के पास चेहरा छुपाते हुए कहता है—"अभी मन नहीं भरा···"

"हट···!" शर्म से गड़ी-गड़ी जाती है झालो। अस्फुट स्वर में कहती है—"घर पर मन नहीं भरता ··"

"नहीं रे ··," चिरंजी कहता है—"माँझी हूँ न! बचपन बीता नाव खेते-खेते, पानी में उछलते-कूदते, डूबते-तैरते। पानी तो खून में भी समा गया है। कितना रूप देखा है गंगा मईया का! मईया की गोद में अपनी

नयी नवेली दुलहन के साथ लोटने में अच्छा लगता है री ."

"तो नाव क्यों नहीं खेता ।" झालो तुनककर कहती है—"बूढ़े बापू को काहे घटवारी बनाता है ? काहे खुद ऊ पार के कारखाने में काम करता है ?"

चिरंजी चुप रहता है कुछ क्षण । फिर कहता है- "पैसा रे, पैसा झालो ! कारखाने में पैसा ज्यादा है। नाव खेकर या मछली पकड़कर उतना पैसा कहाँ री ? फिर सब मछली भी ससुरी धार पर लेटकर जैसे इस घाट से दूसरे घाट में चली गयी "

झालो चुप । कुछ देर दोनों की खामोश सांसें उठती-बैठती हैं। फिर बहुत धीरे-धीरे झालो कहती है –' बापू बड़े अकेले पड़ गये हैं माँझी··· बूढ़े हो गये हैं···दुःख होता है ··"

चिरंजी चुप। परेशान भी। कित्ता सुन्दर रात ! कित्ता बढ़िया हवा ! कैसी चटख-चाँदनी ! पर झालो को देखो। बात का बतंगड़ बनाकर सारा मजा किर-किरा किये देती है। अपने ससुर का दुःख इससे देखा नहीं जाये ! चाहती है कारखाना छोड़कर चिरंजी भी माँझी बन जाये—बाप बैतुल माँझी की तरह ! दिन भर नाव खेवे, सवारी ई पार से ऊ पार ले जावे और रात को मछली पकड़े। और महीने की कमाई ? दो सौ रुपल्ली भी नहीं। और कारखाने में ? पाँच सौ रुपयों की कमाई तो मजे-मजे में !

पता नहीं कितना समय चुप्पी में बीता । झालो दो-चार बार हिली-डोली भी पर चिरंजी अनमना सा लेटा ही रहा। कसमसाई भी झालो। चिरंजी पर झुककर उसने अपने को ढीला छोड़ दिया । गदराया बदन कटे पेड़ की तरह चिरंजी के ऊपर गिरा पर चिरंजी बेमन से बगल को हो लिया। झालो जानती है, चिरंजी उखड़ गया है। चिरंजी, माँझी बनना नहीं चाहता। पानी, नाव, पतवार, लहरें और गंगा मईया से चिरँजी दूर खिसकता जा रहा है। चिरंजी की दुनिया गंगा पार शहर का कारखाना, चिमनी, धुआँ, कालिख और ठर्रा-जुआ-शराब की दुनियाँ बन गयी है। बाप, दादा, परदादा पानी से खेले जिन्दगी भर पर चिरजी पानी मे भागे। हाय री किस्मत !!

नींद आ जाती है झालो को। पता नहीं कितनी देर के बाद अचानक नींद टूटती है तो बहुत दूर, जहाँ पानी की धार मुड़ सी गयी है, वहाँ आधा अंधेरा और आधी रोशनी में दो-चार नावें डोलती सी नजर आयीं। सर के ऊपर से, लगभग पानी को छूकर कुछ पाखि सरसराते हुए निकल गये। उनके परों की गंध जैसे देह से टकराकर मँझदार में घुलमिल जाती है। गंगा के सीने पर राख का रंग लिए कुहासे की चादरें फीकी होती जाती हैं और फिर उस राख और कुहासे की परतों के उस पार एक लाली सी फूटती है, और ऐसे फूटती है कि पूरब की बदली लाल, धरती लाल और गंगा मईया की गोद लाल !

देखते-देखते भोर के उजास में उस पार के कारखाने की चिमनी और इस पार के खेत खलिहान साफ-साफ फूटने लगते हैं। नाव मंझधार कब की छोड़ चुकी थी। इस पार गाँव में, कुहासे में लिपटी ठेकेदार की ऊँची हवेली का खाका उभरने लगता है। मशीन की कुप्प कुप्प आवाज़ भोर के सन्नाटे को चीरती हुई नाव तक आ पहुँचती है। गाँव भर में बिजली नहीं है पर मशीन लगवा कर ठेकेदार सा'ब बिजली लय आये हैं, अपनी हवेली में। सब पैसे का खेल ! झालो मन ही मन न जाने क्यों उदास हो जाती है। चिरंजी शायद ठीक ही कहता है।

चिरंजी ने नाव का रुख घर की ओर किया। बापू पहले खेप के इन्तजार में घाट पर बैठे होंगे। बैतुल माँझी की सवारियाँ अगर बिदक जाये तो चिरंजी और झालो, दोनों की खैर नहीं। चिरंजी चप्पू तेज चलाता जाता है। झालो पतवार सँभालती है, उतावली सी।

० ० ०

रेत के टीले पर विशाल बूढ़े बरगद की ओट में ऊँकड़ू बैठकर, हुक्का सुड़कते हुए बैतुल माँझी की गिद्ध दृष्टि पानी से लगी थी। बैतुल मुंह अधेरे घाट पर आ गया था। नाव बरगद के पेड़ से बँधी रहती है। आज वहाँ नहीं थी। मतलब साफ था, चिरंजी और झालो नाव लेकर गये हैं। मछली पकड़ने या रात-बिरात किसी सवारी को पार उतारने ? ·· बैतुल मन-ही-मन फिक्-फिक् हँसता है। ऐसे नसीब कहाँ ? उसका बेटा तो 'जैंटिलमैन' बन गया—है, करखनिया बन गया है।··· बहू बिचारी

अच्छी है पर उसकी बात चिरंजी सुने तब न !

बरगद की टहनियों पर चिड़ियों की चिकिर-मिकिर और तेज हुई। भोर की हवा और उजियारा पानी के टुकड़ों से घुलमिलकर शीशे के छोटे-छोटे टुकड़ों जैसे कचकौंध पैदा करने लगे। घाट के शिव मन्दिर की घंटियाँ लगातार गूंजती रहीं। दूर, उस पार से आने वाले जहाज की चिमनी का एक टुकडा नजर आया। वैतुल माँझी की बेचैनी बढ़ती गयी। इस पार जहाज भिड़े, उससे पहले सवारियाँ लेकर नाव को मँझ-धार ले जाना होगा। तभी तो जहाज से पहले ही वह उस पार पहुँच सकेगा। तभी तो भोरौआ सवारी हमेशा की तरह उसी के बने रहेंगे। नहीं तो जहाज से वैतुल माँझी का क्या मुकाबला ! कहाँ मशीन और कहाँ आदमी ?

आपाधापी में कुछ और वक्त बीता। सरजू गोप दूध का कनस्तर लेकर हाज़िर। शहर में दूध पहुँचाना है। मांगराम सब्जी की टोकरियाँ लेकर हाज़िर। उस पार आढ़त पर पहुँचाना है। मातादीन फलों का बोरा लिए उकता रहा है। गंगाशरन कारखाने की भोरौआ पारी में जाने को मचले···पर···पर चिरंजी दिखे तब न। आज साले को पीट-पीटकर भूस भर देगा वैतुल !

सहसा वैतुल के चेहरे पर खिची नसें पसर सी जाती हैं। भोर का कुहासा भेदकर वैतुल को अपनी नाव, अपना चिरंजी और झालो दीख जाता है। बड़ी फुर्ती से चिरंजी कुछ ही समय में घाट पर नाव भिड़ा देता है। थोड़ा ओट में। झालो कूदकर नीचे उतर पड़ती है और घर की ओर भागती है। चिरंजी नाव भिड़ाकर बापू के सामने से गुजरता है···

"मछली ?"

"जाला नहीं फेंका था बापू।"

"काहे ?" वैतुल की दबी चीख उभरती है—"फिर रास रचाने गया था ?"

चिरंजी का खून खौल उठता है। चुप रहता है कुछेक क्षण, फिर कहता है—"तुम सठिया गये हो बापू। मछलियाँ धार में बहकर दक्खिन की ओर गयी हैं। जाला फेंककर कोई फायदा नहीं··"

"चुप बे !" बैतुल गरजता है—"लाट साहब जो बना है। आँख रहे तब न पानी देखकर मछली की ओट लेगा !"

"अब की साल से घाट की नीलामी में बोली नहीं लगाना बापू…," बैतुल के सामने ही थोड़ा सा सर झुकाकर चिरंजी एक बीड़ी सुलगा लेता है—"घाटे का सौदा छोड़ो…"

"चुप ससुरा !" बैतुल दहाड़ता है।

चिरंजी खिसिया कर बीड़ी का धुआँ बैतुल के मुँह पर फर्र…र्र से उड़ाकर घर की ओर चल देता है।

…तब तक नाव भर जाती है। बैतुल के सहायक बलिया और टुनटुन नाव सँभाल लेते हैं। चिरंजी से निपटकर बैतुल उछलकर नाव पर बैठता है। बलिया की लग्गी माटी से टकराती है। नाव घाट छोड़ती है।

"कितना उमर भईल हो बैतुल ?" बैतुल को उछलते देखकर कोई पूछता है—"अब तो यह उछल कूद छोड़ो।"

"उमर ?" बैतुल हँसता है—"तीन-चार बीसा, यानि सत्तर-अस्सी होगा…जनमें थे तब, जब बड़ा जोर का बाढ़ आया था इस गंगा में… खेत खलिहान सब डूब गया रहा…"

सब इधर-उधर देखने लगते। सब जानते हैं, बैतुल माँझी अब चालू हो गया है…बजता रहेगा 'रेडियोरिकॉर्ड' की तरह…बोलता रहेगा पचासों बार सुनी-सुनायी कथा।

अपने करखनिया बेटे का रंग-ढंग देखकर बैतुल का मन दुःखता है। माँझी का बेटा और पानी से प्यार नहीं। हाथ में पतवार की जगह कारखाने की हथौड़ी-छैनी ! मुंह में माँझी-मल्लाह के गीत की जगह फिल्मी धुन ! कंधे पर जाल की जगह रेडियो-ट्राँजिस्टर ! मन भारी हो उठता है बैतुल का। लड़के का साथ होता तो आज तक वह मशीन वाली नाव (मोटर बोट) खरीद लेता, नया-नया घाट नीलामी में बोलता कितना कुछ करता…।

…बैतुल को अपना बचपन याद आता है। क्या मजाल कि कभी भी बाप के सामने मुँह खोला हो। लाख मुसीबत में भी नहीं। मुसीबत

की घड़ी में ही तो बाप ने उसे माँझी बनाया था।

…याद आता है बैतुल को, तब गंगा मईया ने जैसे दूसरा ही रूप धरा था। घुप्प अँधेरिया साँझ ! ऊपर से बदली और बिजली। साँय-साँय बहे पवन पुरवैय्या। फन फुफकारते साँप की तरह पानी उठे और डोले। नैया खिलौने की तरह मंझधार में नाचे। कित्ता उमर रहा होगा बैतुल का तब ! यही कोय चौदह-पन्द्रह बरस ! गौना ही हुआ था तब चिरंजी की माय से।

…सो मईया का यह रूप देखकत बैतुल डर से थर-थर काँपे। दुबका बैठा था नाव के एक किनारे। बाप ने चमकती बिजली की रोशनी में बैतुल का चेहरा देखा - कागज की तरह सफेद। उसी वक्त बाप ने गरदनिया देकर उसे उठाया। बाप दहाड़ा—"ससुरा, माँझी का बेटा होकर पानी से डरता है? ले थाम पतवार।"

"बाप हो…" बैतुल डर से गिड़गिड़ाये, "हम से ई काम नहीं…"

"नाहीं?" बाप गरजे—"नाव भर लोगों की जान तेरी मुट्टी में, और तू डर से बेहाल !"

बैतुल चुप्प !

"सँभाल पतवार…" बाप ने प्यार से पीठ ठोका था—"डट के जवान…"

बैतुल फिर भी चुप। हाथों में जैसे किसी ने हथकड़ी पहना दी हो। नाव डोले डगमग-डगमग। हवा बहे सन-सन-सन-सन…। बिजली कड़के-किर्र-कड़ाक…क…क…।

"मौगी (औरत) है का रे?" बाप ने उसे हवा में उठा लिया था—"यहीं पटक-पटकर तेरा सर फोड़ूँगा और फिर गंगा मईया की गोद में लहास बहाकर जेहल जाऊँगा…नहीं तो थाम पतवार…"

काँपते हाथों से बैतुल ने पतवार सँभाली थी। कुछ क्षणों के बाद बाप ने एक बार फिर पीठ ठोका था, प्यार से सर पर हाथ फेरा था। …हाथों का काँपना थम गया था…फिर हाथों की माँसपेशियाँ उभर उठी थी…बोल फूटा था मुंह से 'जय गंगा मईया…या…या।'…बैतुल बन गया माँझी उसी दिन से…

"हे हो···ओ ओ··" एक मशीन वाली नाव सर्र से बैतुल के बगल से सरकते-सरकते धीमी हो जाती है। बैतुल चौंककर सर उठाता है। नाव उस पार के सरकारी जिला बोर्ड के अफसर का है। ठेकेदार की अफसर से गहरी छनती है। ठेकेदार का बेटा बिसेसर बीच में बैठा मूँछों पर ताव दे रहा है। चेले-चमचे उसे घेरे बैठे हैं।

"का हो ?" टुन-टुन चिल्लाता है—"कौन बात है जो ऐंठते हो ?"

"हम ऐंठे ?" शायद बिसेसर बोला—"हम तो बैतुल का ऐंठना बन्द करेंगे। साला, हरामी—साधु बनता है···"

बैतुल का जी चाहा, कूदे नाव से और जा दबाए बिसेसर की नरेटी ·। साला ऐय्याश। लौट रहा होगा शहर से रात गुजार कर। जिस दिन से बैतुल ने फुलबसिया को ठेकेदार के चंगुल से बचाया है, गणेसी को ठेकेदार की गुलामी से उबारा है, उसी दिन से ठेकेदार उसका दुश्मन। खैर बैतुल चुप ही रहता है।

"देख लेंगे—देख लेंगे," बिसेसर चिल्लाता है—"अब की कैसे बोली बोलोगे, देख लेंगे। ई घाट पर अब हमारा नाव चलेगा···"

'वाह रे ठेकेदार हाकिम !" बलिया हँसे, "रईस होकर पतवार थामोगे ? जात गँवाओगे ?"

"अरे जात कौन गधा गँवाए रे ?" बिसेसर मशीन वाली नाव के बीच खड़ा होकर शराब के नशे में झूमे—"हम किराये का, भाड़े का माँझी रखकर नाव चलवायेंगे और इस बैतुलवा हरामी की रोजी रोटी छीनेंगे। चाहे नफा हो या नुकसान। हा···हा।"

मशीनी नाव सर्र से गुजर जाती है। बलिया और टुनटुन नाव सँभालते हैं। सवारी टुकुर-टुकुर बैतुल को देखें। बैतुल माँझी की नाव न रहे तो उनका क्या होगा। कौन उन्हें मुंह अंधेरे उस पार आढ़त-बाजार-कारखाना ले जाएगा ?

बैतुल एकटक चप्पू का गिरना और उठना देखे। चप्पू से टकराकर टूटते मोतियों की लड़ी देखे। देखे एकटक पानीमें अपनी तस्वीर · आज ठेकेदार उसे गाली दे गया।·· जवान बेटा चिरंजी के रहते उसके बूढ़े बाप को धौंस दे गया।···मजाल था, बैतुल के रहते कोई उसके बूढ़े बाप

की ओर उँगली तक उठाये!··· सब नसीब की बात है। बैतुल के साने से एक हाहाकार निकलकर मझधार की अतल गहराइयों से समा जाता है।

पर बैतुल ने तो कोई गलत काम नहीं किया था। अपनी अनाथ भाँजी फुलवसिया को वह न देखे तो कौन देखेगा ? बात तो तब और बिगड़ी जब ठकेदार साहब के समधी ने उस दिन···

० ० ०

···उस दिन फुलवसिया झुककर छोटी मेज पर गिलास सजो रही थी, बहुत अनमनी सी। फुककर गिलास सजोने या घर का कोई काम झुककर करते समय कपड़े-चोली अस्त-व्यस्त हो ही जाते हैं। फुलबसिया इस सच्चाई से वाकिफ नहीं थी, ऐसी बात नहीं पर ठेकेदार साहब के घर पर काम करते वक्त आज तक इधर निगाह रखने की कोई खास जरूरत नहीं पड़ी थी। हाँ कभी-कभार ठेकेदार साहब के बड़े लड़के बिसेसर बाबू की तरसती निगाह उसपर पड़ती है। वे अक्सर कुछ चीजें उसे देना चाहते हैं, पटाना चाहते हैं उसे। पर फुलवसिया उस शराबी-कबाबी के चंगुल से खुद को बचाना खूब जानती है। रहा ही कौन अब इस हवेली में ! ठेकेदारिन, और ठेकेदार साहब का छोटा लड़का परमेसर बाबू। परमेसर बाबू तो शहर में रहकर पढ़ते-लिखते हैं। गाँव कभी-कभार ही आते हैं। अभी छुट्टियों में आये हैं। हां,अभी ठेकेदार के समधी बीबी बच्चों सहित दिल्ली से आये हैं। ठेकेदार की बड़ी लड़की-दामाद गाँव में नहीं, हिन्दुस्तान में भी नहीं। चले गये हैं सात-समुन्दर पार— अमरीका में। आते हैं साल-दो साल में एक बार— सामान-चीजों से लदकर। तब कहते हैं गाँव बड़ा अच्छा लगता है। घूमते हैं दिन-भर, रात-भर बैतुल मामू की नाव पर। मशीन वाली नाव या जहाज से तो वे ऐसे बिदकते हैं जैसे आग को देखकर शेर। कहते हैं, बहुत देखा है ऐसी मशीनी नाव अमरीका में।

·· जो हो, उस दिन गिलास सजोकर उठते ही निगाह सीधे ठेकेदार साहब के समधी की चमकती-तरसती निगाहों से टकरायी। फुलबसिया इस दृष्टि का अर्थ समझती है—ऐसी आँखों से टक्कर लेना भी जानती है। लेकिन झंझट करने से क्या फायदा। वह उठकर जाने लगती है।

"फुलबसिया...," ठेकेदार साहब के समधी बैठे-बैठे आवाज देते हैं... "जरा इधर तो आ।"

फुलबसिया हाजिर होती है।

"क्या फटा-गन्दा कपड़ा पहनती है !" ठेकेदार साहब के समधी फुलबसिया के लहँगे का मुआइना करते हैं—"अब की चुनाव के बाद तुझे दिल्ली ले जाएँगे हम। चुनाव तो जीतेंगे ही, तुझे भी कोठी पर काम के लिए रखेंगे...दिल्ली बड़ा गजब का शहर है फुलबसिया..."

फुलबसिया को काटो तो खून नहीं। कमरे में कोई नहीं। मेज पर गिलास और शराब की बोतल। उस कमरे से ठेकेदार-ठेकेदारिन की आवाजें आ रही हैं। किसी भी क्षण वे यहाँ आ सकते हैं। ऊपर की कोठी से, समधी साहब की जवान बेटी नूपुर जो छुट्टियाँ बिताने दिल्ली से अपने माँ-बाप के साथ गाँव आई है, के गुनगुनाने की आवाज साफ सुनायी पड़ती है...और...और समधी साहब की ऊँगलियाँ कपड़ा देखने के बहाने फुलबसिया के घुटनों को छू-छू जाती हैं।

"परदेसी साहब...!" उस कमरे से ठेकेदार साहब अपने समधी से कहते हैं—"आज गाँव का दौरा करने के बाद यह लगभग तय हो गया है, इस उपचुनाव में आप जीतकर पार्लियामेंट जायेंगे ही..."

एक झटके से हाथ उठता है समधी साहब का। फुलबसिया आँखों से अँगारे बरसाती हुई फिर भी खड़ी ही रहती है। परदेसी जी के चेहरे पर परेशानी की लकीरें पल भर के लिये उभर कर मिट जाती हैं। दिल्ली में ऐसे लफड़े वे अपनी जेब में लिये घूमते-फिरते हैं। वे इन लफड़ों से निपटना भी जानते हैं।

"फुलबसिया यहाँ है।" परदेसी साहब रुककर एक बार फिर फुलबसिया की नथ पर निगाहें डाल कर फुस-फुसाकर कहते हैं—तेरी यह नथनी तो मैं ही उतारुँगा जानी .." फिर ऊँची आवाज़ में कहते हैं—"इसे बुलाकर इसके हाथ कुछ गोस्त-मुरगी भिजवा दीजिए...दारु इनके बगैर जमता नहीं।"

"फुलबसिया फुलबसिया ..."ठेकेदार साहब व्यस्त हो उठते हैं, अपने हमदर्द और राजनैतिक मददगार समधी को खुश करने के लिए।

चिल्लाकर कहते हैं—"सब सामान हाजिर है सरकार···फुलबसिया···अरे ओ···"

फुलबसिया कदम झटकाती हुयी कमरे से निकल जाती है। परदेशी मूछों के नीचे से मुस्कुराते हैं। बहुत देखी हैं उन्होंने ऐसी छोकरियाँ ! बचकर जायेगी कहाँ !!

"भई छह लाख वोटर में तीन लाख तो हमारी बिरादरी के हैं।" ठेकेदार साहब कमरे में दाखिल होते हुए कहते हैं—"बाकी और-और जात के हैं। हाँ, हरिजन वोट साठ-सत्तर हज़ार से एक लाख तक होगा···"

"भई तीन लाख हमारी बिरादरी के हैं तो क्या हुआ !" परदेसी दारु गिलास में उड़ेलते हैं—"हमारी जात के उम्मीदवारों की भी तो कमी नहीं। सारे वोट थोड़े ही हमारे बक्से में पड़ेंगे ?"

"अय···हय···हय परदेसी साहब," ठेकेदार साहब मज़ाक करते हैं—"यहीं मार खा गया हिंदुस्तान···अरे आप चुनाव के जमे हुए खिलाड़ी हैं, अब आपको यह क्या बताऊँ कि वोट डाले नहीं, डलवाये जाते हैं। यह दिल्ली नहीं है कि एक बूथ में दो-चार ग़लत वोट पड़े कि हँगामा। अरे यह तो गाँव है—जिसकी लाठी उसकी भैंस-यानी जिसकी लाठी उसको वोट।"

"पर ईमानदार चुनाव अधिकारी और पुलिस···"

"क्या कर लेंगे ईमानदार चुनाव अधिकारी जब हरिजनों को वोट डालने ही नहीं दिया जायेगा ?" ठेकेदार ने उनकी बात काटते हुए कहा—"और यहाँ की पुलिस ?" हें···हें···हें···उनका अफसर अपनी ही जात का है···"

"अरे भई कैसे रोकोगे हरिजनों को ?"

"अरे छोड़िये भी परदेसी जी," ठेकेदार दारु की सीप लेते हुए बोले—"आज आप ज़रा बचकानी बातें कर रहे हैं। ससुरों को पैसे—"

"पैसे से काम नहीं चलता अब··" परदेसी फिर मूंछों के नीचे हँसे—"पता है, विलायत में विलायती अखबारनवीस, रेडियो, टी॰ व्ही॰ वाले कहते हैं, हिंदुस्तान में हरिजन तक अब 'पालिटिकली मेच्योरेंड' हो गये

हैं। इन्हीं के बल पर आज सरकार बनती और टूटती है !"

"तब" तब"'," ठेकेदार साहब की आँखें जल उठीं। "सब सालों को चुनाव से एक रोज पहले ऐसा खदेड़ूंगा, ऐसा मारूँगा कि पानी तक नहीं माँग सकेगा। बस्ती को घेर कर आग लगा दूंगा'''बकते रहें आपके विलायत के अखबार'''!"

"हिस्स'''आहिस्ता बोलो''" परदेसी हँसे—"तुम बहुत जल्दी आवेश में आ जाते हो ठेकेदार।"

"हें'''हें'''हें'''" ठेकेदार अधबुझी आँखें खोलकर हँसे।

वैसे भूतपूर्व संसद सदस्य श्री एच० एल० परदेशी को यह सब पता न हो, ऐसी बात नहीं। उनकी सारी जिंदगी राजनीति को ही समर्पित है। बँधी बँधाई 'काँस्टीच्यूएँसी' है उनकी। हर बार वहीं से चुनाव जीतते हैं पर अबकी बार लड़खड़ा गये और गच्चा खा गये। कहते हैं उन्हीं की पार्टी के लोगों ने उनके खिलाफ काम किया, तभी हारे। यही वजह है, उनकी निगाह देश के सबसे पिछड़े एक ऐसे इलाके पर पड़ी जहाँ उनकी समधी का रुतबा है। यहाँ हर चुनाव में होता वही है जो ठेकेदार चाहते हैं। जीत उसी की होती है, जिसे ठेकेदार का आशीष प्राप्त हो। सो उन्होंने पार्टी आला कमान के सामने यहाँ से उपचुनाव लड़ने की योजना रखी। पर पार्टी ने उन्हें इस आधार पर टिकट नहीं दिया कि वे यहाँ के नहीं हैं। खैर कोई बात नहीं। भर दिया है कागज आज़ाद उम्मीदवार के रूप में। चुनाव में तो समधी जी की मदद से जीत निश्चित है। जीत आयेंगे तो पार्टी-अध्यक्ष खिसियानी हँसी हँसकर पार्टी में खुद उनका स्वागत करेंगे। रखा क्या है इन सब में। पैसों की कोई कमी नहीं है। बस जीत भर जायें इस उपचुनाव में परदेशी, फिर सबको देख लेंगे।

"बड़ा बढ़िया दारू है परदेसी साहेब !" ठेकेदार मुस्कराए—"तबियत तर हो गयी''"

"स्कॉच है''," परदेसी साहब की आँखों में गुलाबी डोरे उभरे—"जब जितना चाहें, भिजवा दूंगा—बस हुक्म भर कर दें।"

"स्कॉच ?" ठेकेदार हकलाये," खरीदा है दो एक बार, कलक्टर साहब को जब शहर के क्लब में पार्टी दी थी। बड़ा मँहगा है परदेसी साहब।"

"मँहगा ?" परदेसी का ठहाका गूंजा "तो क्या हुआ ? अरे लखपति आदमी हैं आप। अब जरा ठाट-बाट से रहिए भी। क्या यह खादी की पुरानी धोती-कुर्ता ओढ़े फिरते हैं।"

"अजी क्या लखपति !" ठेकेदार शर्माये—"अनपढ़ आदमी हूँ। यह आप लोगों की कृपा ही है कि आज शहर की कलक्टर-दारोगा तक सलाम मारते हैं।"

ठेकेदार आगे कुछ नहीं बोलते। क्या जरूरत है ठाट-बाट की ? जब ठर्रे से काम चल जाता है तो विदेशी दारु की क्या जरूरत है ? यह दिखावा परदेसी को ही मुबारक हो।

वैसे ठेकेदार जानते हैं, बड़ा रुतबा है, परदेसी का भी। एक टेली-फोन कर दें तो बड़े-बड़ों के छक्के छूट जायें। हमला हो जाय कस्टम्स या इनकम टैक्स का। जब हवेली बन रही थी तो बड़े से बड़े व्यापारी परदेसी के इशारे पर खुद आकर सीमेंट, ईंट और एक से एक बढ़कर खूब-सूरत सामान दे गये। परदेसी की ही कृपा से गाँव में केवल उनकी हवेली में बिजली आयी। धुप्प अँधेरे गाँव में सिर्फ उनकी हवेली झक-झक चम-कती है। परदेसी साहब ने जेनरेटर का इंतजाम कर दिया है। नलके का पानी भी अब तीसरी मंजिल तक चढ़ता है।

तभी तो ठेकेदार ने अपनी एक मात्र लड़की, जिसे शहर भेजकर अंग्रेजी स्कूल में लिखाया पढ़ाया था, मुँहमाँगे दहेज पर परदेसी साहब के लड़के के साथ ब्याहा। अच्छा ही जम गया यह रिश्ता। लड़की-दामाद अमरीका में खुश ! इधर ठेकेदार भी खुश। चुनाव जीतकर परदेसी तो गाँव की ओर मुंह भी नहीं फेरेंगे। देशोद्धार तो दिल्ली में बैठकर ही किया जाता है। इधर का काम ठेकेदार ही देखेंगे।...मजे ही मजे हैं, बस परदेसी चुनाव जीत भर जायें।

"फुलत्रसिया को नहीं देख रहा हूँ समधी जी ?" मुर्गी की टाँग चबाते-चबाते परदेसी बोल ही गये।

क्या जवाब दें ठेकेदार ! यहीं मार खा जाते हैं परदेसी। जवान, छोकरी देखी और मुँह में पानी। पिछले चुनाव में किसी ऐसी ही छोकरी से इस तरह फंसे कि सब किया कराया चौपट।

फुलबसिया का मामा बैतुली माँझी सनकी आदमी है। कहीं कुछ कह दे उससे फुलबसिया तो वह गाँव भर में हल्ला मचायेगा। फुलबसिया खुद भी मुंह फट है। शादी नहीं हुयी तो क्या हुआ। हाथ तक नहीं रखने देती है। ठेकेदार का अपना बेटा बिसेसर एक बार उलझा था उससे। ठेकेदार ने बीच-बचाव किया, नहीं तो इज्जत मिट्टी में मिल जाती।

"बुलाइये ज़रा···," बाँयी आँख मींचते हुए परदेसी फिर बोले—"जब से उसे देखा है, बस कलेजा फड़क रहा है।"

"छोड़िये भी···नौकर-चाकर हैं···," ठेकेदार ने टालना चाहा—"गाँव की बात है··चुनाव का मामला है···बात बिगड़ी तो सम्हालना मुश्किल होगा।"

परदेसी ने कोई जवाब नहीं दिया। टुकुर-टुकुर देखते रहे समधी की ओर। कभी-कभी बड़ा गुस्सा आता है इस बगुला भगत पर ! गाँव भर में साधु बनता फिरता है और शहर जाकर ऐश करता है। अरे उस किशोरी को कैसे भूलें परदेसी ?

"गाँव की किशोरियों के जिस्म से मिट्टी की एक जो गंध आती है न समधी जी ··," परदेसी नशे में झूमते हुए बोले, "वह मजा शहर की भाड़े की औरतों में कहाँ ?"

ठेकेदार खिसियानी चुप्पी लगा जाते हैं।

अब यही सब उटपटाँग बात ठेकेदार के पल्ले भी नहीं आती। फुलबसिया की उमर की तो बेटी है परदेसी की, नूपुर ! फुदकती रहती है दिन भर गाँव में—मर्दाने लिबास में। उनकी बीबी भी माशा अल्लाह जवान ही लगती है, चेहरे पर बिलायती क्रीम-पाउडर लगा कर। बूढ़ा नहीं गयी है। फिर भी परदेसी जी को लड़की चाहिये। वह भी गाँव में। सब यह कैसे होने का !

ठेकेदार साहब और कुछ सोचते हैं। ई नूपुर उनके बेटे बिसेसरा का दिमाग चाट रही है। लिखा पढ़ा तो कुछ नहीं बिसेसरा, जमीन-

जायदाद देखने की भी फुरसत नहीं। बस जब देखो तब समधी की लड़की के सामने हाथ बाँधे खड़ा रहता है। वह तो भला हो छोटे लड़के परमेसरा का, जो ठीक-ठाक इंजीनियर बन रहा है···।

"तो समधी ?···जरा आवाज़ लगाओ फुलबसिया को !" परदेसी तोते की तरह एक ही रट लगाये हुए हैं—"मैंने उसके आगे चारा फेंका है···।"

"अरे बिसेसरा···," ठेकेदार साहब सीधे फुलबसिया को बुलाने से कतराते हैं— "अरे ओ बिससरा आ···आ···"

बच्चे बच्चियों को आवाज लगाकर ठेकेदार पहले आश्वस्त होना चाहते हैं, वे लोग शाम के इस झुटपुटे में हवेली में हैं या नहीं।

···पर बिसेसर तक ठेकेदार साहब की आवाज़ पहुँचे तो कैसे पहुँचे ! जिस तरह परदेसी साहब के सीने में एक जवान अल्हड़ लड़की ने हलचल मचा रखी थी उसी तरह बिसेसर भी दीवाने हैं, एक शहरी पंक्षी नूपुर के चक्कर में। सूरज उगते ही नूपुर की फरमाइशों की लिस्ट बिसेसर के सामने पेश होती। आज़ बोटिंग, कल मेला, परसों गाँव में आये मीना-बाजार···। बिसेसर भला कैसे इनकार करे ! बटन खुली कमीज़, चुस्त पेंट, कंधे से लटकते कैमरे और धूप के आकर्षक चश्मे में नूपुर स्वर्ग से उतर आयी मेनका, रंभा सी लगती। बेझिझक बिसेसर का हाथ थामकर गाँव की खाई-खंदक पार करती। जाने-अनजाने में बिसेसर के बदन से टकरा जाती नूपुर···सिहरन सी दौड़ जाती सारे शरीर में···इस्स् · कितना कोमल, कबूतर की गर्दन की तरह मुलायम है नूपुर की देह ! एक टक देखते रहने को मन करता है। स्पर्श से सिहरन-सी दौड़ जाती है। बिसेसर का मन करता, उठाकर ले जाये इस शहरी पंक्षी को किसी सुनसान अमरैय्या की छाँव में ··उफ् बड़ा तड़पाती है ये छोकरी ···और अनजान सी बनी रहती है, जैसे कुछ हुआ ही न हो। क्या यही रंग-ढंग हैं शहर की परियों के। क्या वहाँ मर्द के साथ इतनी घनिष्टता यूं आम बात है ? ···तब तो शहर जाकर ही बस जाना चाहिए।

जो भी हो, बिसेसर अपनी पुश्तैनी हवेली की दूसरी मंजिल के संकरे गलियारे में एक कुर्सी खींच लाता है। कुर्सी पर एक स्टूल रखता है।

फिर दीवार के सहारे स्टूल पर चढ़ता है। एक बार पीछे देखता है। वहीं खड़े होकर वह आहट लेता है…नहीं, कहीं कोई नहीं है। सिर्फ नीचे बथान के पीछे, ऊपर पानी चढ़ाने की मशीन कुप्प…कुप्प आवाज के साथ चलती जा रही है…बगल के कमरे से आहट जरूर आयी पर वहाँ गणेसिया होगा। वह साला तो सचमुच ही गोबर गणेश है। उससे कोई डर नहीं।…दो इंच के फासले पर नीचे पाताल है। पैर खिसका कि सीधे नीचे। हड्डी का चूरा बन जायेगा। पर अब डर काहे का। पिछले छः सात दिनों से तो यही कह रहा है वह।…धीरे-धीरे, चोरों की तरह अँधेरा ओढ़कर, बिसेसर अपना सर बाथरूम के बाहरी रोशन-दान तक ले आता है। रोशनदान पहले से ही खुली है। अंदर के दृश्य आँखों से उतरकर सीधे सीने को धौंकनी की तरह मथते हैं। बाथरूम में आदमकद शीशे के सामने नूपुर धीरे-धीरे कपड़े उतार रही है…नहाने की तैयारी कर रही है। नूपुर की कमीज उतरी कमर तक अनावृत शरीर बाथरूम की मध्यम रोशनी में मक्खन की तरह दमका…बिसेसर का कंठ सूखता है… शीशे में अपने को निहारती हुई नूपुर अपने शेष वस्त्र भी धीरे-धीरे उतारती है…शीशे में अपनी छवि देखती हुयी घूमती है, इठ-लाती है, सम्मोहिता सी खुद को निहारती है, जैसे शीशे में प्रतिफलित, स्फटिक की तरह स्वच्छ और साँचे में ढला बदन अपना न होकर अपने माशुका का हो…बिसेसर के टखने काँपते हैं, सर चकराता है…नूपुर शावर खोलती है…पानी की बूंदें फुहार की तरह, रिमझिम की तरह, नूपुर के शरीर को घेर लेती हैं। लगता है नूपुर मोतियों की लड़ी के बीच कैद है।…शावर की ध्वनि के ऊपर एक खुशनुमा गीत काबू पाता है,…नूपुर गा रही है…शावर के धुंधलके में वह मखमली जिस्म जैसे और मोहमय बन उठता है।…लगता है, पानी की बूंदें भी नुपुर के जिस्म पर रुकने को तरस रही हैं…इस्स्… कैसी मीठी गमक फैल रही है बाथरूम में… आह ! बिसेसर का सारा शरीर, शरीर का रोम-रोम रोमाँचित हो उठता है…धौंकनी की तरह सीना उठता-बैठता है।…लगता है कलेजे के अंदर एक मीठी आँच धधक रही है और गाँव के गँडों लोहार की हथौड़ी सर पर लगातार चोट कर रही है…।

जैसे पूरा बाथरूम नूपुर मय हो जाता है। उमस है अभी गाँव में, पर आराम भी है। तभी नूपुर को यह जगह इतना अच्छा लगता है। यह बाथरूम, शावर, टाइल्स, झिलमिल रोशनी देखकर पता ही नहीं चलता, नुपुर शहर में है या गाँव में। बड़ी अच्छी बनी है यह हवेली। चाँदनी रात को छत पर खड़े हो जाओ तो दूर गंगा चाँदी की चमचमाती चादर सी लगती है। अँधियारी रात में जब माँझी-मल्लाह-मछेरे अपनी नाव से तान छेड़ते हैं तो गीत की रेशे, किसी रतजगा वनपाखी की कुक से मिल-कर एक अलौकिक ध्वनिपुंज की रचना करता है।···बहुत सा समय लेकर, अँगड़ाई-आलस में झुलती सी नुपुर शावर के नीचे किसी वनपाखी की ही तरह फुदकती रहती है। सिर्फ जल की बूंदें ओढ़े उसका शरीर शीशे में प्रतिफलित होता रहता है। इतना सुँदर, मोहक और शिशिर की तरह नाज़ुक शरीर की छाया देखकर शर्माती, मोहित होती हुई नूपुर की बंद पलकें आवेश में ऊपर की ओर उठती हैं और कुछ क्षण उसी अवस्था में ठहर कर, न जाने क्यों, पलकें अचानक खुल जाती हैं। और फिर दो भूरी आँखों से टकराती हैं।···पल भर में हिम की तरह ठंडा हो जाता है सारा शरीर दो पल और लगते हैं सब कुछ समझने में ··, फिर गुस्सा, ख़फ़गी, लज्जा, संकोच और घृणा सबकुछ हृदय से उठकर कंठ के पास आ रुकते हैं और फिर ये अनुभूतियाँ चीख बनकर कंठ से फूट पड़ती हैं।

···अपनी लाड़ली की चीख सुनकर नशा हिरन हो जाता है। दौड़े आते हैं एच०एल० परदेसी ऊपर। ठेकेदार साहब भी दौड़ते हैं। ठेकेदारिन भी। नूपुर की माँ भी···। सभी बाथरूम के दरवाजे पर दस्तक देते हैं।

कुछ क्षण बीतते हैं। फिर अंदर से शाँत आवाज़ आती है—"खोल रही हूँ।"

दरवाज़ा खुलता है। बहुत जल्द कपड़े पहनकर नूपुर बाहर आती है। उस बिखराव में भी नूपुर अद्‌भुत सुंदर लग रही थी।

सभी उसे घेरकर खड़े हो गये थे। फुलबसिया तक भी। प्रश्नों की झड़ी लग गई थी। एक के बाद एक। सबसे ज्यादा परेशान ठेकेदार साहब लग रहे थे। ठेकेदारिन की आँखों में तो आँसू आ गये थे। पर नूपुर सर झुकाये चुपचाप खड़ी रही। भीगे केश चेहरे पर बिखर आये

थे। पानी की बूँदें बालों पर उलझी थीं।

"··पापा हम लोग अभी, इसी वक्त यह जगह छोड़कर चले जायेंगे···" दर्जनों सवालों के बाद नूपुर बोली थी। उसका स्वर अनुत्तेजित, शाँत पर आँधी के पहले जैसी खामोशी लिये हुए था।

"हुआ क्या है, कुछ तो बताओगी नूपुर ···?" पुनः एक साथ बहुत सारे स्वर। परदेसी साहब का भी।

"इस घर में एक बहुत ही गंदा आदमी रहता है···" दिल्ली के अंग्रेजी स्कूल और कॉलेज में पढ़ी नूपुर बोली—"ए डर्टी, पार्वट मैन··· कावर्ड···व्हू ट्रेसपासेस इन टू प्रायवेसी ऑफ अ यंग गर्ल···"

"मतलब ?" परदेसी साहब चौंके—"बोल क्या रही है तू ?"

"अरी अंग्रेजी में क्या गिट-पिट कर रही है ?" ठेकेदारिन बोली—"हमें भी तो कुछ समझा ?"

"अब क्या समझाऊँ मौसी " भीड़ ठेल कर जाती हुई नूपुर बोली—"मैं··मैं नहा रही थी··ऊपर रोशनदान से कोई छुपकर मुझे देख रहा था···"

ठेकेदारिन बेहोश होते-होते बचीं। ठेकेदार साहब गुस्से के मारे आगबबूला हो उठे। हाय-तोबा मच गयी हवेली में। परदेसी जी ने जलती हुई आँखों से एक बार ठेकेदार साहब की ओर देखा फिर कड़ककर पूछा—"कौन हो सकता है ऐसा गुस्ताख आपके घर में ठेकेदार साहब ? मैं उसे जिंदा जला दूँगा··।"

"पापा, आप उसे जिंदा जला नहीं सकते ," नूपुर उस छोटी सी भीड़ के पास लौट आयी, फिर दबे स्वर में उसने परदेसी जी से कहा—"पापा, हम बिसेसर को जिंदा जला सकते हैं भला ?"

लगा जैसे भूचाल आ गया हो। यह क्या कह रही है उनकी लाड़ली !!

"हाय हो दइया !!" फुलबसिया मुँह में आँचल छुपाकर एक ओर भागी। ठेकेदारिन दहाड़ मार कर रोने लगीं। ठेकेदार साहब ने उन्हें चुप कराया। बात इस हवेली क्या, इस कमरे तक से बाहर नहीं जानी चाहिये।

"पापा, हम अभी-इसी वक्त यहाँ से चले जायेंगे।" नूपुर अपना निश्चय दुहराती हुई नीचे के बैठक की ओर चली गयी।

सकते में आ गये थे परदेसी जी। फिर चुनाव का क्या होगा? ठेकेदार की यह हवेली, यहाँ का धन, यहाँ के लठैत, इस क्षेत्र में उनका रौब, अपनी जाति के लोगों का सहयोग - इन सबका क्या होगा? भला भूतपूर्व जमींदार जो अब ठेकेदार बन गये हैं, की मदद के बगैर चुनाव जीता जा सकता है?

लगा ठेकेदार पर भी बिजली गिरी है। सवाल सिर्फ इज्जत का नहीं है। ई बिसेसरा तो एक दिन लुटिया ही डुबो देगा। सवाल समधी जी की राजनैतिक कृपा से वंचित होने का भी था। चुनाव की तैयारी में काफी धन खर्च हो चुका था। समधी जीत जायें तो यह पैसा अफसरों से, लोगों से पैरवी, तबादला, तरक्की, मुकदमा, कमीशन के तौर पर जाल में फंसी मछली की तरह अपने आप उठ आयेगा। फिर समधी ने अतीत में उनके लिए किया भी बहुत है। दिल्ली में परदेशी का रौब तो यहाँ गाँव-शहर-कलक्टर-थाना में ठेकेदार का रौब। दिल्ली में वे बने रहते हैं तो ठेकेदार के लठैत, गुंडे खून-कत्ल तक करके बेलाग छूट जाते हैं। शहर का बड़े से बड़ा व्यापारी लाइसेंस परमिट के लिये उनके कदम चूमते हैं।

…पल भर में दोनों पार्टियों के बीच जैसे मूक समझौता हो गया। परदेसी और ठेकेदार की नजरें मिलीं, गिरीं और फिर मिलीं। ठेकेदार ने खुद को दिलासा दिया—अभी-अभी तो परदेसी जी फुलबसिया को बाहों में भरने के लिए बेताब बने हुए थे। तो क्या हुआ अगर बिसेसरा ने उस छोकरी को दूर से ज़रा नहाते हुए देख लिया। और परदेसी जी तो छोकरी के चक्कर में एक बार अपनी नाव ही डूबो बैठे थे। टिकट ही नहीं मिला था पार्टी से।

परदेसी साहब ने भी मन ही मन अपने को तैयार किया—क्या जरूरत थी दिल्ली से नूपुर के यहाँ आने की? और आकर दिन दहाड़े देहाती-जाहिल बिसेसर के साथ इतना घुलने-मिलने की? जो कपड़े यहाँ पहनकर वह घूमती है, वह भी गाँव की दृष्टि से अशोभनीय हैं। भला गाँव में कोई लड़की कमीज़ और बेल बॉट्स पहनती है? क्या यह दिल्ली

है ? नहीं, नहीं बहुत आजादी दे रखी है उन्होंने अपनी लाड़ली को।··· बस चुनाव हो जाये फिर नूपुर को तो सँभालोगे ही, साथ ही बिसेसरा साले को···

···ये सारी बातें आँखों ही आँखों में की जाती हैं। ऐसे समझौते भी चुपचाप ही होते हैं सो हो गया पर नादान माँ को कोई कैसे समझाये। जब होश आया तो ठेकेदारिन चिल्ला उठी—"ई का भईल ? नूपुरी का कहत है रे बिसेसरा ?"

चिल्ला कर ठेकेदारिन ने पुनः भीड़ इकट्ठा कर लिया। जो बात दब सकती थी, वह फिर फैली। उनका विलाप दूर-दूर से सुना जा सकता था। अर्थात् जो बात कमरे तक सीमित थी उसे अब कुछ ही क्षणों में सारा गाँव जानेगा।

···ठेकेदार, परदेसी परेशान। बिसेसर के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ीं। लेकिन पल भर में दूसरे कमरे में खड़े बिसेसर की रणनीति बदली। पुत्र के इस शातिराना अंदाज़ को देखकर ठेकेदार की बाँछें खिल गईं। परदेसी भी खुश हुए। बिसेसर तो उनसे भी बड़ा पॉलिटिशियन निकला।

"मईया, हट जो ··," दूसरे कमरे से बिसेसर की आवाज आई—"मौसा जी नूपुर बड़ी भोली है। उससे पहचानने में गलती हुई। केवल आँखें ही देख पायी है न ? ये रहा वो कमीना जो रोज साँझ को बाथरूम के रोशनदान से झाँकता था ··आज मैंने भी इसे झाँकते हुए देखा है···"

लात, जूता और घूँसे की बरसात हो रही थी। गणेसिया किसी तरह अपने को बचाने की कोशिश करता हुआ चिल्ला रहा था—"हाय गे मईयां···बापू हो···हम्म कुच्छो न जानैछिये··मालिक ··हाय हो मालिक···"

दृश्य वहाँ से सरककर बाथरूम से सटे दूसरे कमरे की ओर चला गया था। गणेश उर्फ गणेसिया वर्षों से ठेकेदार की हवेली में गुलाम था। छः फीट लम्बे-तगड़े इस ढांचे को आदमी न कहकर जानवर ही कहा जाये तो अच्छा है। हवेली का कोई भी अगर लगातार चौबिसों घंटे काम करने को कहे तो वह करेगा। निःसंकोच करेगा। आज तक गणेसिया के चेहरे पर किसी ने नाराज़गी नहीं देखी। हाँ, नाराज़ अगर वह होता

है तो कभी-कभी सिर्फ फुलबसिया पर। दुनियाँ जहान पर न बिगड़े पर फुलबसिया पर बिगड़े। फुलबसिया इसका मतलब समझती थी। और समझती थी, तभी गणेसिया को आँखों से ओझल नहीं होने देती···काम में उसका हाथ बँटाती···भरी दुपहरिया में खेतपथार में उसका खाना खुद पहुँचा आती···और, और एकाँत में जब गणेसिया मिलता तो उस अनाड़ी के इत्ते बड़े सीने में छुप जाती। अनाथ फुलबसिया के बैतुल मामू ने तय कर रखा है, अबकी फागुन में जब घाट की नीलामी हो जायेगी तो गणेसिया-फुलबसिया का ब्याह भी हो जायेगा। बहरहाल···।

गणेसिया के होंठ फट गये थे। दाँत से खून रिस रहा था। चेहरे पर तमाचे और घूंसे के निशान थे। जमीन पर उल्टा लेट कर वह डर, खौफ और बदहवासी में बेतहाश रो रहा था और कभी बिसेसर और कभी परदेसी साहब के पाँव पकड़ता और कहता – "मालिक···हमका माफी देई दो·· हम्म कुच्छो न कर लिए···हे हो मालिक···।"

तैराक जिस तरह पानी को चीरकर आगे बढ़ता है, उसी तरह अचानक, अप्रत्याशित फुलबसिया भीड़ चीरकर बीच में आयी और बिसेसरा की ओर मुखातिब होकर बोली—"काहे बाबू, गणेसिया को काहे मारत हौ ?"

"तू चुप रह मुंहझोसी !"

"खबरदार, मुँह सँभालो हाकिम···," फुलबसिया गुस्से से थर-थर काँप रही थी—"चोरी और सीनाजोरी ! का बोलिन नूपुर दीदी ? कौन देखत रहे बाथरूम के ऊपर से ? तुम न गणेसिया ?"

भीड़ फिर सकते में आई। बिसेसर को काटो तो खून नहीं।

"हे बिसेसर मालिक, तोहार बात छिपल है किसी से ?" बिसेसर की ओर मुखातिब होकर फुलबसिया जैसे फिर बरस पड़ी—"काहे बुलावत हौ रात को हमका ? काहे ऊ दिना अंधेरिया में छत पर टूट पड़े रहौ हम पर ? काहे झोपड़िया में आदमी भेजते हौ रोजे ? ऊ तो ई गणेसिया हरदम छाँव का माफिक हमरे साथ रहे हैं। नहीं तो तुम नोच के खा न जाते हम का ? हम का रंडी हैं ? ··"

"चोऽप हरामजादी।" परदेसी गरजे।

"गाली मत दो हाकिम !" फुलबसिया अब जमीन पर बैठ गयी थी और गणेसिया को उठाने की कोशिश कर रही थी—"ई हमार आदमी है, अगले फागुन में…।"

"अबे चुप फागुन की बच्ची !" अब ठेकेदार साहब दहाड़े—"हमारे सामने जबान चलाती है ?"

"अरे ऐसी बेहया औरत को तुमने नौकरी कैसी दी ठेकेदार ?" परदेसी दहाड़े।

फुलबसिया के कानों में अब कुछ जा रहा था या नहीं पता नहीं पर वह गणेसिया के जख्म देखकर फफक पड़ी। वह उसे सहारा देकर खड़ा करवा रही थी। इसी बीच परदेसी साहब ने एक थप्पड़ और गणेसिया को रसीद दिया।

"खबरदार बाबू," फुलबसिया का चेहरा तमतमा उठा था—"एक निहत्था, बेकसूर पर हाथ उठावत हौ ? और ऊ सामने खड़ा बिसेसर बाबू, जो नूपुर दीदी को नंगा देखिन, उन पर नहीं ? काहे नहीं करोगे अईसा। अरे तुम्हरो नजर तो हम पर रहै…बदसलूकी करत रहौ आज साँझे !…अरे, तुम और ऊ बिसेसर बाबू तो एकै थैली के चट्टे-बट्टे हौ…।"

तेजी से, बहुत तेज़ी से परदेसी साहब की रणनीति बदल रही थी। इस औरत ने कहीं का नहीं रखा था उन्हें। परदेसी साहब इस मुल्क के राजनीतिज्ञ हैं। इस देश की राजनीति में दीन, ईमान, सिद्धान्त, सत्य, शिव और सुंदर—कुछ भी स्थिर नहीं रहता। कल जो शत्रु थे, आज मित्र बन सकते हैं। आज जो मित्र हैं, कल शत्रु बन सकते हैं। इसके अलावा चुनाव सभाओं में भाषण देते-देते 'खतरनाक स्थिति' किसे कहते हैं, उन्हें अच्छी तरह पता है। किस चुनाव सभा में भाषण बाज़ी करना गौरवपूर्ण है और किस सभा से, दुम दबाकर, कार में बैठकर भाग आना गौरवपूर्ण है, वे अच्छी तरह जानते हैं। संसद के अंदर अपने प्रतिद्वन्द्वी को किस तरह काटना है, वे जानते हैं और संसद के बाहर उसे किस तरह 'चुप' कराया जाता है, उन्हें यह भी पता है।

"वह घड़ी कहाँ है हरामी…" आगे बढ़कर गणेसी को एक और

थप्पड़ लगाकर उन्होंने फिर कहा—"मेरी सोने के चेनवाली घड़ी किधर वेच आया साले ?"

अर्थात् अब वे गणेसी-फुलबसिया को 'चुप' करने पर तुले थे। घड़ी ? गणेसी जैसे फिर आसमान से गिरा। फिर नये सिरे से हँगामा शुरू हुआ। फुलबसिया को अब जैसे काठ मार गया हो। उसके मुँह से जैसे शब्द ही नहीं फूट रहे थे। चेहरे पर विषाद, क्षोभ और हताशा की लकीरें लिपी-पुती थी। अमीरों से लड़ना इतना आसान नहीं था।

परदेसी साहब ने जानबूझकर घटना को दूसरा मोड़ दिया था।··· चुनाव सामने है। एक बार अगर गाँव में बिसेसर या उनकी ही कम-जोरी की बात फैल गयी तो इसका बड़ा जबर्दस्त असर पड़ेगा।·· चोरी के आरोप में फुलबसिया और गणेसी, दोनों को अंदर करना होगा।

"क्या हुआ गणेसी ?" गणेसी को फुलबसिया के अलावा अब तक जिस आवाज की अपेक्षा थी, सुनाई पड़ी।

"हमका वचाय लौ परमेसर बाबू···," गणेसी उठकर परमेश्वर के पाँव से उलझ गया—"रामकसम···गंगा मईया कसम···हम कुछ भी नहीं किये मालिक···।"

परमेश्वर को अब तक सब कुछ मालूम हो चुका था। उसने गणेसी को सहारा दिया। उसका चेहरा जगह-जगह से फूट गया था। खून की धारा अब भी रिस रही थी चेहरे से।

"मौसा जी, आप सब गलत काम कर रहे हैं," एक पल गणेसी-फुलबसिया को देखकर परमेश्वर ने कहा—"मैं नूपुर से बात कर आया हूँ। दोषी और कोई है। इन्हें छोड़ दीजिये।"

परदेसी, ठेकेदार साहब के इस छोटे साहब की बात से चौंके ! परमेश्वर गाँव से दूर शहर रहता है। साल भर में इंजीनियर बनेगा। लिखने-पढ़ने में तेज़-तर्रार। बातचीत में तेज तर्रार। कल कह रहा था, इस जाहिल मुल्क में चुनाव बेकार है। तब ? तब क्या परमेश्वर नक्स-लाइट बन गया है ? उनकी ··उनकी वेटी नूपुर भी तो अप्रयत्क्ष रूप से उनके खिलाफ ही वोल रही है। क्या हो गया है इस देश के लिखे-पढ़े इन लड़कों को ?

"इधर आओ परमेश्वर···" परदेसी साहब उछलकर परमेश्वर के पास आये और उसे खींचकर एक कोने में ले गये। फिर दबे स्वर में बोले—"तुम पागल तो नहीं हो गये परमेश्वर? जानते हो क्या बोल रहे हो? डू यू नो हुम यू आर सर्पोटिंग?···ए·· सरवेंट·· ए बेग··· ।"

"मौसा जी, आप···।"

"परमेश्वर, तुम्हारा स्टैटस, तुम्हारा क्लास, तुम्हारे वर्ग का प्रतिनिधित्व मैं करता हूँ। तुम अपना वर्ग, अपने क्लास को भूलकर गणेसी का समर्थन करोगे? टेल मी विच क्लास यू बिलाँग टू?" परमेश्वर को बोलने का मौका दिये वगैर परदेसी जी बोले।

"मौसा जी, गणेसी को मैं जानता हूँ। वह कभी भी ऐसा···"

"ओफ हो···" कुशल भूतपूर्व सांसद परदेसी बोले, "एट प्रेजेंट माई स्टेक इज वेरी हाई··चुनाव सामने है। स्कैंडल घर के बाहर जायेगा तो नतीजा क्या होगा तुम जानते हो। और उनका क्या होगा? यहाँ की नौकरी छोड़कर फिर कहीं पकड़ लेंगे। नंगों को लाज शरम काहे का?"

"लेकिन चुनाव में तो आप इन्हीं लोगों के लिए लड़ रहे हैं," परमेश्वर हकलाया—"राजनीति में तो आप इन्हीं लोगों के प्रति समर्पित हैं?"

"बकवास!" परदेसी गर्जे—"राजनीति एक 'केरियर' है इस देश में। यहाँ कोई किसी के प्रति समर्पित नहीं है। ऐसा समर्पण अब तक सिर्फ भाषणों में ही होता आया है।"

"भूलना नहीं परमेश्वर, हम एक ही क्लास के हैं···" परमेश्वर पर अपनी बातों का असर होता देखकर परदेसी जी ने आखरी वार किया—"अपने पिता की इज्जत, इस हवेली की इज्जत, गणेसी और फुलबसिया जैसे भिखमंगों के लिए कुर्बान न करो। उनको बचाने के लिए तुम हमें नहीं मार सकते··।"

परमेश्वर चुप।

परदेसी साहब भी चुप। सिर्फ गणेसी की सिसकी उस चुप्पी को तोड़ती रही। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था, उसके छोटे बाबू उसको नहीं बचायेंगे।

"बुला, बैतुल माँझी को कोई," अब ठेकेदार साहब चिल्लाये—"तब तक इन दोनों की तलाशी लेंगे। फुलबसिया-गणेसी, अपने-अपने सामान यहाँ लाओ।"

दोनों उठे। नीचे गये। फिर पल भर में अपने-अपने बक्से ऊपर ले आये।

"बक्सा खोल!—" ठेकेदार साहब ने गणेसी को कहा—"जल्दी खोल स्साले!"

गणेसी अपना टीन का बक्सा खोलता है। एक फटी धोती, एक गमछा, एक छोटा शीशा, एक हनुमान चालीसा, एक कंघी और शायद किसी मंदिर के प्रसाद का कुछ अंश बक्से से बरामद हुए।

फुलबसिया को भी बक्सा खोलने का हुक्म दिया गया। उसने निःशब्द चोली के अंदर से अपने टीन के बक्से की चाभी निकालकर फर्श पर फेंक दिया। परदेसी साहब, फिर उखड़े। यह बदजात औरत आज उन्हें कदम-कदम पर मात दे रही है।

चाभी उठाकर परदेसी साहब ने किसी को बक्सा खोलने के लिए कहा। बक्सा खुला। ऊपर एक पुरानी साड़ी, उसके नीचे तह किया हुआ लहँगा। फिर एक चोली। फिर गाँव के मेले से खरीदे गये दो सस्ते किस्म के रंगीन बेल-बूटेदार ब्रा निकले। घड़ी का कहीं नामो-निशान नहीं। भीड़ में उपस्थित मर्दों के लिए इतना कुछ ही संकोचमय था। ठेकेदार साहब ने निगाहें फेर लीं। पर परदेसी जी ने 'सर्च' का काम आगे जारी रखा।...उन सबके नीचे बहुत ही सस्ते किस्म का पावडर, अफगान स्नो और काजल की एक डिबिया निकली। काँच की कुछ रंगीन चूड़ियाँ भी मिलीं। टीन के बक्से के नीचे अखबार बिछा था।

"अखबार हटा के देख ज़रा!" परदेसी बोले। अखबार हटा और नीचे से जो कुछ निकला, उपस्थित भीड़ उसके लिए कतई तैयार नहीं थी। ठेकेदारिन को शर्म के मारे फिर गश आ गया। समधिन का चेहरा तमतमा उठा। ठेकेदार साहब बच्चों के सामने शर्म से गढ़ गये और जाँबाज भूतपूर्व सांसद, श्री एच० एल० परदेसी को पसीना आ

गया।

बक्से से निकली हुई चीज़ एक अंग्रेजी पुस्तिका थी। पुस्तिका का शीर्षक था—'एक्ट्स ऑफ लव'। आठों पृष्ठ रँगीन थे और उनमें अशालीन मुद्रा में साहब और मेमों की तस्वीरें थीं।

"नीच, कुलटी क्यों रखी है यह किताब इस शरीफ घर में?" परदेसी गरज ही पड़े। शायद अपनी झेंप मिटाने।

"जानते नहीं हो बाबू?" कितना व्यंग्य था फुलबसिया की आवाज़ में "जब तुम जैसे नामर्द आते हैं हमारे पास तो उन्हें यह किताब दिखाकर...।"

"चोऽप स्साली..." परदेसी जी का हाथ लगभग उठ चुका था। पर उन्होंने अपने को सम्हाल लिया।"

"गाली मत बको हाँ..," फुलबसिया क्रुद्ध स्वर में बोली—"हम अंग्रेजी पढ़ने जानते हैं भला? पूछो बिसेसर बाबू से वही बतायेंगे, यह किताब हमारे पास क्यों है भला...।"

भीड़ में फिर से कुहराम मचा। नहीं! पानी सर से ऊपर चढ़ाता ही जा रहा है। ठेकेदार ने अब सर थाम लिया।

"हम तो छोटे लोग हैं, कुलटा, कुलक्षणी हैं..." बैठकर अब बक्सा सँवारते-सँवारते फुलबसिया रो पड़ी थी—"जितना गड़बड़, गलती, बदनामी—सब हम ही लोगन का है। हम पूछत है, पिछला हफ्ता काहे बिसेसर बाबू कागज में लपेटकर कोई अच्छा चीज देने के बहाने ऊ किताब देकर खिसक गये थे? है जवाब किसी के पास?"

अब किसी के पास कोई जवाब नहीं था। या शायद कोई अब आगे कुछ और कहना नहीं चाह रहा था। घड़ी चुराने की बात यों भी फीकी लगने लगी थी अब। परदेसी साहब जान गये थे, फुलबसिया से पार पाना मुश्किल है। ठेकेदार साहब समझ गये थे, बात ज्यों-ज्यों बढ़ती जायेगी, त्यों-त्यों नये तथ्य उजागर होते जायेंगे। थाना पुलिस करने से भी कोई फायदा नहीं। अच्छा हो चुनाव तक उन दोनों को नौकरी पर लगा रहने दिया जाय। उसके बाद लात मार कर निकाल दिया जाये। अपने सुपुत्र विश्वेश्वर प्रसाद नारायण सिंह ने उन्हें कहीं का

नहीं रखा था। ससुरे की हड्डी पसली एक करने की इच्छा हो रही थी।

"ई सब हम का सुन रहे हैं हाकिम ?" बैतुल को बुलाया गया तो वह मिनटों में आ धमका—"गणेसी का ई हाल कौन किहीन ? काहे ? क्या किहिस गणेसी ?"

"मामू, गणेसी बड़ा भोला—एकदम गऊ है।" फुलबसिया अपने आँसू पोंछती हुई टीन के दोनों बक्से सँवारती हुई बोली—"तभी ई हाकिम लोग जानवर जैसा पीटीन्ह इसे !"

"काहे ? काहे ठेकेदार हाकिम ?" सनकी बैतुल माँझी के सर पर खून चढ़ गया था जैसे—"कौन हमार दमाद का ई हाल किया ?... आऊर तू फुलबसिया ? काहे रोवत है री ? कोई तूझ पर भी हाथ उठाइस ?"

"नहीं मामू, हाथ नहीं उठाइस..." दया, करुणा, स्नेह, समर्थन पाकर फुलबसिया फफक पड़ी थी—"पर बड़ा बेइज्जत कीहिन आज हाकिम लोग...भूखो मर जायें पर अब यहाँ काम नहीं मामू !"

"बैतुल," ठेकेदार बोले—"इन लोगों ने चोरी की है। समधी साहब की घड़ी नहीं मिल रही है।"

"चोरी ? हरगिज नहीं हाकिम..." सनकी कहे जाने वाले बूढ़े बैतुल के ललाट की नीली शिरायें दब और उभर रही थी—"गणेसी जैसा भोला—।"

"खैर जो हुआ सो हुआ !" ठेकेदार ने बैतुल को रोककर सहमति के लिए परदेसी साहब की आँखों में झाँका। उन्होने धीरे से सर हिलाया तो वे बोले—"हम इन दोनों को माफ करते हैं। ये यहीं काम करेंगे...।"

"हरगिज नहीं..." पता नहीं कितनी देर के बाद गणेसी के कंठ से शब्द फूटा था—"कुछ भी करें, भीख माँगे पर ई हवेली में काम नहीं...।"

"आइसा जुलुम करते हो ठेकेदार ?" बैतुल माँझी की सनक जैसे सर पर सवार हो गयी, "गरीब पर इतना जुलुम करते हो और वोट माँगने भी हमारे पास ही जाते हो ? आना अबकी ठेकेदार ! हम गाँव

भर में, शहर में ढिढोरा पीटेंगे—कैसा जुलुम किया तुम लोगों ने गणेसी के साथ !…हम सब सुने हैं ठेकेदार हाकिम, क्या कीहिन हैं बिसेसर बाबू भी फुलबसिया के साथ…समधी जी भी…।"

परदेसी जी को अपनी नैया डोलती नजर आई। पर पल भर में उन्होंने अपने ऊपर काबू पा लिया। इन घटिया लोगों की गीदड़ भभकी से वे डरने वाले नहीं हैं। न ही वे इनके भरोसे चुनाव लड़ रहे हैं। सिर्फ वोट डालने या न डालने से ही चुनाव में हार-जीत नहीं होती। चुनाव जीतने के बहुत सारे तरीके हैं और वे सारे तरीके उन्हें आते हैं। डरने से काम नहीं चलता है। जो डर गया, वो मर गया।

…सारा हँगामा जब खत्म हो गया था और बैतुल उन लोगों को लेकर चला गया था तो परमेश्वर ने परदेसी जी से पूछ ही लिया था, कि घड़ी की चोरी अगर हुई हो तो भी एक निहायत ही मामूली चोरी है पर वोटों की चोरी, बैलट बक्सों की चोरी, रिगिंग, बूथ कैपचरिंग किस किस्म की चोरी में आता है ?

परदेसी जी ने पहले गुस्से से फिर करुणा भरी नज़रों से इस उभरते हुए 'नक्सलाइट' को देखा भर था। उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया था। शायद उनसे कोई जवाब नहीं बन पड़ा था।

o o o

पिछले दो-तीन सालों से एक नई मुसीबत बैतुल माँझी के पीछे लगी है। इस घाट पर उस पार के पटवारी की नजर लगी है। नीलामी के वक्त हर साल आ धमकता है और बोली हाँक के घाट का रेट बढ़ा देता है। घाट की इज्जत और अपने खानदानी पेशे की इज्जत रखने के लिए बैतुल को भी ऊँचे भाव पर हाँक लगानी पड़ती है। बाज़ वक्त पटवारी खुद आकर समझौता करना चाहता है। घाट पर आकर कहता है—"बैतुल अब इतनी उमर में क्यों नाव खेते हो ? आज नहीं कल, ऊपर तो जाना ही है ! अब राम का नाम लो माँझी और घाट हम लोगों के हवाले करो…।"

बैतुल चुपचाप ऊँकडू बैठकर रेत पर लकीरें खींचता है। सर उठाकर पटवारी को देखता भी नहीं।

नहीं रखा था। ससुरे की हड्डी पसली एक करने की इच्छा हो रही थी।

"ई सब हम का सुन रहे हैं हाकिम ?" बैतुल को बुलाया गया तो वह मिनटों में आ धमका—"गणेसी का ई हाल कौन किहीन ? काहे ? क्या किहिस गणेसी ?"

"मामू, गणेसी बड़ा भोला—एकदम गऊ है।" फुलबसिया अपने आँसू पोंछती हुई टीन के दोनों बक्से सँवारती हुई बोली—"तभी ई हाकिम लोग जानवर जैसा पीटीन्ह इसे !"

"काहे ? काहे ठेकेदार हाकिम ?" सनकी बैतुल माँझी के सर पर खून चढ़ गया था जैसे—"कौन हमार दमाद का ई हाल किया ?··· आँऊर तू फुलबसिया ? काहे रोवत है री ? कोई तूझ पर भी हाथ उठाइस ?"

"नहीं मामू, हाथ नहीं उठाइस···" दया, करुणा, स्नेह, समर्थन पाकर फुलबसिया फफक पड़ी थी—"पर बड़ा बेइज्जत कीहिन आज हाकिम लोग···भूखो मर जायें पर अब यहाँ काम नहीं मामू !"

"बैतुल," ठेकेदार बोले—"इन लोगों ने चोरी की है। समधी साहब की घड़ी नहीं मिल रही है।"

"चोरी ? हरगिज नहीं हाकिम···" सनकी कहे जाने वाले बूढ़े बैतुल के ललाट की नीली शिरायें दब और उभर रही थी—"गणेसी जैसा भोला—।"

"खैर जो हुआ सो हुआ !" ठेकेदार ने बैतुल को रोककर सहमति के लिए परदेसी साहब की आँखों में झाँका। उन्होंने धीरे से सर हिलाया तो वे बोले—"हम इन दोनों को माफ करते हैं। ये यही काम करेंगे···।"

"हरगिज नहीं···" पता नहीं कितनी देर के बाद गणेसी के कंठ से शब्द फूटा था—"कुछ भी करें, भीख माँगे पर ई हवेली में काम नहीं···।"

"आइसा जुलुम करते हो ठेकेदार ?" बैतुल माँझी की सनक जैसे सर पर सवार हो गयी, "गरीब पर इतना जुलुम करते हो और वोट माँगने भी हमारे पास ही जाते हो ? आना अबकी ठेकेदार ! हम गाँव

भर में, शहर में ढिंढोरा पीटेंगे—कैसा जुलुम किया तुम लोगों ने गणेसी के साथ !···हम सब सुने हैं ठेकेदार हाकिम, क्या कीहिन हैं बिसेसर बाबू भी फुलबसिया के साथ···समधी जी भी···।"

परदेसी जी को अपनी नैया डोलती नजर आई। पर पल भर में उन्होंने अपने ऊपर काबू पा लिया। इन घटिया लोगों की गीदड़ भभकी से वे डरने वाले नहीं हैं। न ही वे इनके भरोसे चुनाव लड़ रहे हैं। सिर्फ वोट डालने या न डालने से ही चुनाव में हार-जीत नहीं होती। चुनाव जीतने के बहुत सारे तरीके हैं और वे सारे तरीके उन्हें आते हैं। डरने से काम नहीं चलता है। जो डर गया, वो मर गया।

···सारा हँगामा जब खत्म हो गया था और बैतुल उन लोगों को लेकर चला गया था तो परमेश्वर ने परदेसी जी से पूछ ही लिया था, कि घड़ी की चोरी अगर हुई हो तो भी एक निहायत ही मामूली चोरी है पर वोटों की चोरी, बैलट बक्सों की चोरी, रिगिंग, बूथ कैपचरिंग किस किस्म की चोरी में आता है ?

परदेसी जी ने पहले गुस्से से फिर करुणा भरी नज़रों से इस उभरते हुए 'नक्सलाइट' को देखा भर था। उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया था। शायद उनसे कोई जवाब नहीं बन पड़ा था।

० ० ०

पिछले दो-तीन सालों से एक नई मुसीबत बैतुल माँझी के पीछे लगी है। इस घाट पर उस पार के पटवारी की नजर लगी है। नीलामी के वक्त हर साल आ धमकता है और बोली हाँक के घाट का रेट बढ़ा देता है। घाट की इज्जत और अपने खानदानी पेशे की इज्जत रखने के लिए बैतुल को भी ऊँचे भाव पर हाँक लगानी पड़ती है। बाज़ वक्त पटवारी खुद आकर समझौता करना चाहता है। घाट पर आकर कहता है—"बैतुल अब इतनी उमर में क्यों नाव खेते हो ? आज नहीं कल, ऊपर तो जाना ही है ! अब राम का नाम लो माँझी और घाट हम लोगों के हवाले करो···।"

बैतुल चुपचाप ऊँकड़ू बैठकर रेत पर लकीरें खींचता है। सर उठाकर पटवारी को देखता भी नहीं।

तुम्हारा लड़का चिरंजी तो अब करखनिया बन गया है। साहबों की तरह पैंट-कमीज पहनता है···वह तो अब माँझी-मछुआरा बनेगा नहीं···।"

"तो फिर···," बैतुल माँझी की दुखती रग को पटवारी ने छेड़ ही दिया। अंदर एक तूफान ने घुमड़ना शुरू कर दिया।

"न···नहीं···माँझी, इसमें नाराज होने की क्या बात है !" पटवारी बूढ़े, सनकी बैतुल के रँग-ढ़ँग से वाकिफ है। सुना है, उस दिन गाँव के रईस ठेकेदार साहब को भी जम कर खरी-खोटी सुनाई थी इसने। तभी ज़रा सम्हलकर कहता है—"तुम्हारे बाद तो इस पेशे में कोई आयेगा नहीं···।"

"न आये, पर तुम्हारी नजर इस पर काहे ?" बैतुल दूर गंगा के सीने पर एक चील को उड़ते देखता है। बीच दरिया में पानी की तेज़ सलेटी धार में धूप के एक टुकड़े को झक-झक चमकते देखता है। पास बँधी फेरी-नाव और मछली पकड़ने की छोटी सी डेंगी से लहरों के छोटे-छोटे टुकड़े टकरा कर टूटते रहते हैं। एक चपल ध्वनि तरँग किनारे की रेतीली मिट्टी से टकराती रहती है। खाली नैया डगमग-डगमग डोलती है, झूले की तरह। बैतुल का मन भारी हो जाता है यह सब देखकर। बाप, दादा, परदादा—सबके पाँव के छाप इसी मिट्टी में जैसे गूँथे हैं पर वह जब नहीं रहेगा, सब निश्चिह्न हो जायेंगे।

"अरे माँझी, हम तो भाड़े पर फेरी लगवायेगा," पटवारी उसे समझाता है—"ठेके पर मछली पकड़ने देगा। वैसे तुम चाहो तो हम से सौदा कर सकते हो।"

डूबते सूरज की रोशनी पानी से सनकर जैसी लाली बिखेरती है बैतुल मांझी के चेहरे पर वैसी ही लाली छा जाती है।

"पटवारी, सुन लो," बैतुल अपना तमतमाया चेहरा ऊपर उठाता है—"हम, हमारी मैय्या को लेकर सौदा नहीं करते हैं। तुम चले जाओ यहाँ से।"

पटवारी चला जाता है। जाते-जाते कहता है—"तो तुम नीलामी के दिन बोली हाँकोगे ?"

"हाँ, जरूर।"

"ठीक है, हम भी देख लेंगे," जाते-जाते पटवारी बोल गया—"इस बार हम अकेले नहीं हैं। बिसेसर भी साथ है। याद रखना।"

"याद है, याद है," बैतुल माँझी का सीना बड़ी तेज़ी से उठ-बैठ रहा था—"जब तक गंगा मईया हमारे साथ हैं, तुम सब कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते हों···।"

पटवारी चला गया। पर बैतुल के सर पर जैसे पहाड़ टूट पड़ा। बिसेसर से वह कैसे लोहा लेगा? और बिसेसर उस दिन का फुलबसिया और गणेसी का गुस्सा तो ऐसे ही उतारेगा। बदला तो वह लेगा ही। इतनी बदनामी हुई है गाँव में उस लफँगे की। वह उसे कैसे भूल पायेगा? उस दिन भी खुल्लम खुल्ला नाव से बैतुल को धमकी दे रहा था। खैर गंगा मईया की जो मरजी।

···आखिरकार घाट नीलामी का दिन आ ही गया। घाट किनारे शिव मंदिर के चबूत्तरे पर खड़े-खड़े नदी के मोड़ पर बैतुल की निगाह जाती है। एक नाव तिरतिर बहती हुई इधर ही आ रही है। नाव में दो-तीन सवारियाँ हैं। बैतुल समझ गया, नाव जिला बोर्ड दफ्तर से आयी है। उस में बोली हाँकने के हाकिम भी बैठे होंगे।

नाव पास आयी तो बैतुल को एक खाकी वर्दी दिखायी दी। और पास आयी तो सरजू किरानी साफ दिखा खाकी कपड़ों में लिपटा।

"आर कोतो दूरे नियॆ जावे मोरे, हे सुन्दरी!
बलो, कोन पार भिड़िवे तोमार सोनार तोरी!!
हे सुन्दरी!!"

नाव घाट किनारे भिड़ी तो बैतुल को अपरिचित भाषा में गाना या दोहे की ये पंक्तियाँ सुनाई दी। बैतुल की समझ में कुछ नहीं आया। हक्का-बक्का सा देखता रहा, नाव पर बैठे हैं एक जवान साहब, उसके लड़के की उम्र का होगा। वे ही दोहा बोल रहे थे। नाव किनारे भिड़ते ही वे चुप हो गये।

छलाँग लगाकर सरजू उतरा। दौड़ा-दौड़ा बैतुल के पास आया। सरजू किरानी से बैतुल की खूब छनती है। सरजू चाहता है, बैतुल को

इस साल भी घाट ठेके पर मिले।

"जु हमारा नया साहव—वंगाली—बहुत अच्छा आदमी," सरजू दबे स्वर में कहता है—"शहर से नया आया। यहाँ जहाज या मोटर लंच से आ सकते थे पर नहीं। बोले—पानी, नाव, बहुत अच्छा लगता है। सो नाव से आये। गाँव, पानी, दरिया देखकर बंगला में कविता पढ़ते।"

बैतुल क्या जाने कविता क्या होती है? सो बैतुल चुप।

"सा'व कविता में बोलता," सरजू बोला—

"हे सुन्दरी, और कितनी दूर ले जाओगे मुझे?
तुम्हारे सोने की नाव, किस पार आ लगेगी?
"···या ऐसा ही कुछ-कुछ।"

"पिछले पाँच-छः महीने से सा'ब के साथ हूँ," सरजू फिर बोला—"साहब खुद बंगला दोहे का मतलब समझा देते हैं···खैर तुम घबड़ाओ नहीं बैतुल। जाओ साहव को सलाम करो···।"

बैतुल आगे बढ़ता है। तब तक साहब नाव से उतर चुके थे। उनकी निगाहें दूर खेत, खलिहान, ताड़ के लंबे-लंबे वृक्ष, सोजिना फूल, और फिर उसकी सरहद से आगे धूसर-खपड़ैल मकानों की बेतरतीब कतारों पर थमी थी।

"खूब सुन्दोर···चमोत्कार···" साहब मुग्ध नेत्रों से प्रकृति देखते हुए बोले—"सोरजू इये जायेगा केतना सुन्दोर हाय···देखता हाय और रोबि ठाकुर आऊर उनका पोएम ईयाद आता हाय···"

"पाँव लागि हाकिम···" बैतुल झुकता है, झुककर उनके पाँव छूता है।

"आरे-आरे इये केया?" साहब पशोपेश में पड़ जाते हैं—"आरे भाई, तुम तो हामारा ठाकुर दादा के उमोर का हाय···छिः छिः···पाँव मात छूओ भाई···।"

पता नहीं क्यों, बैतुल की आँखें अचानक छलछला आती हैं। कितना नम्र, कितने अच्छे हैं साहव। कहते हैं, बैतुल उनको उनके दादा की तरह लगता है। सभी पढ़े-लिखे ऐसे नहीं होते तब? परदेसी साहब भी हैं और एक यह बोली वाले सा'ब भी हैं।

"हाम सोरजू से सुना, तुम बोहोत दिनों से फेरी करता," सा'ब

बोले—"सोरजू बोलता तुम्हारा वावा, दादा—सोब लोग एही काम कोरता···।"

"हाँ माई-बाप···" बैतुल हाथ जोड़े बोला।

"ठीक हाय—ठीक हाय···" सा'ब ने इधर-उधर नजर दौड़ाई तो देखा, काफी लोग धीरे-धीरे इकट्ठे हो रहे हैं। बोले—"आब उधर जाकर खाड़ा हो जाओ···ऑक्शन बोलने को तईयार हो जाओ।"

बैतुल चला गया। वे कभी बैतुल का झुर्रियों से भरा चेहरा देखते, कभी नंगे बदन पर केंचुए की तरह उभरी नीली शिराएँ देखते, कभी कमर पर लटकती कपड़े का एक मात्र टुकड़ा देखते। सरजू ने सब कुछ बताया है उन्हें। गांव के कुछ दुष्ट आदमी मिलकर बैतुल की रोटी ही नहीं, बल्कि उससे उसकी साँसें छीन रहे हैं। नाव और पानी ही तो बैतुल की धड़कने हैं। ये नहीं रहा तो मानो सब कुछ उजड़ गया। खैर, वे कर भी क्या सकते हैं ? सरकारी कानून है, जो सबसे ऊँचा बोली बोलेगा, उसी को घाट मिलेगा। सा'ब लाचार। लेकिन बैतुल को ही अगर घाट ठेके पर मिल जाये, उन्हें खुशी होगी।

तब तक पटवारी, विसेसर ठाकुर, रामरतन, केशो और न जाने किसने सा'ब की ओर दौड़े।

"गुड मार्निंग सर !" पटवारी बोला—"बड़ी तकलीफ हुई सर को —ई साला बैतुलवा सारा झंझट किहिस, नहीं तो जिला बोर्ड आफिस में ही निपटारा हो जाता।"

साहब ने उधर देखा भी नहीं। हवा के झोंकों से उनके बड़े-बड़े, कुछ रूखे, कुछ काले केश उड़ रहे थे। सा'ब दोनों हाथों से अपना केश सँवार कर, चश्मा खोलकर, रूमाल से उसे पोंछकर, सरजू से बोले— "सोरजू, काम चालू···।"

पटवारी को देखकर सा'ब के चेहरे पर उभर आया रूखापन बैतुल की आस बढ़ाता है।

"नमस्कार दादा !" बिसेसर आगे बढ़कर सा'ब को कीमती सिगरेट बढ़ाता हुआ बोला—"आप कलकत्ते से आया दादा। कलकत्ता, बांगला देश—बोत बढ़िया जगह है, वहाँ के लोग···"

इस साल भी घाट ठेके पर मिले।

"जु हमारा नया साहब—बंगाली—बहुत अच्छा आदमी," सरजू दबे स्वर में कहता है—"शहर से नया आया। यहाँ जहाज या मोटर लंच से आ सकते थे पर नहीं। बोले—पानी, नाव, बहुत अच्छा लगता है। सो नाव से आये। गाँव, पानी, दरिया देखकर बंगला में कविता पढ़ते।"

बैतुल क्या जाने कविता क्या होती है? सो बैतुल चुप।

"सा'व कविता में बोलता," सरजू बोला—

"हे सुन्दरी, और कितनी दूर ले जाओगे मुझे?
तुम्हारे सोने की नाव, किस पार आ लगेगी?
"···या ऐसा ही कुछ-कुछ।"

"पिछले पाँच-छः महीने से सा'ब के साथ हूँ," सरजू फिर बोला—"साहब खुद बंगला दोहे का मतलब समझा देते हैं···खैर तुम घबड़ाओ नहीं बैतुल। जाओ साहब को सलाम करो···।"

बैतुल आगे बढ़ता है। तब तक साहब नाव से उतर चुके थे। उनकी निगाहें दूर खेत, खलिहान, ताड़ के लंबे-लंबे वृक्ष, सोजिना फूल, और फिर उसकी सरहद से आगे धूसर-खपड़ैल मकानों की बेतरतीब कतारों पर थमी थी।

"खूब सुन्दोर···चमोत्कार···" साहब मुग्ध नेत्रों से प्रकृति देखते हुए बोले—"सोरजू इये जायेगा केतना सुन्दोर हाय···देखता हाय और रोबि ठाकुर आऊर उनका पोएम ईयाद आता हाय···"

"पाँव लागि हाकिम···" बैतुल झुकता है, झुककर उनके पाँव छूता है।

"आरे-आरे इये केया?" साहब पशोपेश में पड़ जाते हैं—"आरे भाई, तुम तो हामारा ठाकुर दादा के उमोर का हाय···छिः छिः···पाँव मात छूओ भाई···।"

पता नहीं क्यों, बैतुल की आँखें अचानक छलछला आती हैं। कितना नम्र, कितने अच्छे हैं साहब। कहते हैं, बैतुल उनको उनके दादा की तरह लगता है। सभी पढ़े-लिखे ऐसे नहीं होते तब? परदेसी साहब भी हैं और एक यह बोली वाले सा'ब भी हैं।

"हाम सोरजू से सुना, तुम बोहोत दिनों से फेरी करता," सा'ब

बोले—"सोरजू बोलता तुम्हारा बाबा, दादा—सोब लोग एही काम कोरता···।"

"हाँ माई-बाप···" बैतुल हाथ जोड़े बोला।

"ठीक हाय—ठीक हाय···" सा'ब ने इधर-उधर नजर दौड़ाई तो देखा, काफी लोग धीरे-धीरे इकट्ठे हो रहे हैं। बोले—"आब उधर जाकर खाड़ा हो जाओ···ऑक्शन बोलने को तईयार हो जाओ।"

बैतुल चला गया। वे कभी बैतुल का झुर्रियों से भरा चेहरा देखते, कभी नंगे बदन पर केंचुए की तरह उभरी नीली शिराएँ देखते, कभी कमर पर लटकती कपड़े का एक मात्र टुकड़ा देखते। सरजू ने सब कुछ बताया है उन्हें। गाँव के कुछ दुष्ट आदमी मिलकर बैतुल की रोटी ही नहीं, बल्कि उससे उसकी साँसें छीन रहे हैं। नाव और पानी ही तो बैतुल की धड़कने हैं। ये नहीं रहा तो मानो सब कुछ उजड़ गया। खैर, वे कर भी क्या सकते हैं? सरकारी कानून है, जो सबसे ऊँचा बोली बोलेगा, उसी को घाट मिलेगा। सा'ब लाचार। लेकिन बैतुल को ही अगर घाट ठेके पर मिल जाये, उन्हें खुशी होगी।

तब तक पटवारी, बिसेसर ठाकुर, रामरतन, केशो और न जाने किसने सा'ब की ओर दौड़े।

"गुड मार्निंग सर!" पटवारी बोला—"बड़ी तकलीफ हुई सर को —ई साला बैतुलवा सारा झंझट किहिस, नहीं तो जिला बोर्ड आफिस में ही निपटारा हो जाता।"

साहब ने उधर देखा भी नहीं। हवा के झोंकों से उनके बड़े-बड़े, कुछ रूखे, कुछ काले केश उड़ रहे थे। सा'ब दोनों हाथों से अपना केश सँवार कर, चश्मा खोलकर, रूमाल से उसे पोंछकर, सरजू से बोले—"सोरजू, काम चालू···।"

पटवारी को देखकर सा'ब के चेहरे पर उभर आया रूखापन बैतुल की आस बढ़ाता है।

"नमस्कार दादा!" बिसेसर आगे बढ़कर सा'ब को कीमती सिगरेट बढ़ाता हुआ बोला—"आप कलकत्ते से आया दादा। कलकत्ता, बांगला देश—बोत बढ़िया जगह है, वहाँ के लोग···"

"सो—र—जू !!" सा'ब चिल्लाये—"तुमको हाम बोला काम चालू ? आऊर इये लोग से बोल दो, इधर से जायें···," बिसेसर अपना सा मुँह लेकर दूर जाकर खड़ा हो गया।

सा'ब जेब से सिगरेट निकालते हैं, होठों पर रखकर सुलगाने की कोशिश करते हैं। हवा के झोंके से सिगरेट नहीं सुलगती।

दुबारा कोशिश करते हैं। अब सिगरेट सुलग जाती है। सा'ब भर-पूर कश खींचते हैं। कुछ नीला, कुछ पीला धुंए का फीता, हवा से उलझ-कर बैतुल के सर के ऊपर से गुज़र जाता है।

सरजू हड़बड़ा कर तैयार हो जाता है। झोले से कागज़-पत्तर निकालकर साहब को दिखाता है। सा'ब कागजों पर दस्तखत करते हैं, फिर कहते हैं—"हाम नाव पर ही बईठेगा, ठीक सोरजू ?"

"ठीक सा'ब···" सरजू लपकता है नाव की ओर। वह और माँझी मिलकर नाव को आधा खींचकर किनारे की रेत पर टिका देता है।

"एनाउन्समेंट करो !" सा'ब नाव पर बैठे-बैठे कहते हैं।

सरजू कागज-पत्तर बगल में दबा लेता है। दो कदम चलकर रेत के एक ऊँचे टीले पर खड़ा हो जाता है। फिर अपने दोनों हाथ पीछे मोड़-कर, अपने धँसे हुए सीने में हवा भरकर, ऊपर, लगभग आकाश की ओर देखकर चिल्लाना शुरू करता है। उसके गले की नसें फूल उठती हैं—

"···मायागंज घाट, पोस्ट बरारी, के जिला बोर्ड की ओर से नीलामी···घाट नीलामी के लिए हाँकने वाला सज्जन हाजिर हों···ओं··· ओं···।"

सरजू की आवाज़ घाट की शाँत लहरों पर नाव की तरह तैरकर धीरे-धीरे मँझधार में खो जाती है। शिव मंदिर के गुम्बद के ऊपर बैठी चिड़ियों का झुंड उस आवाज और उसकी प्रतिध्वनि से चौंक कर फर्र से उड़कर ऊपर लटके बादलों को इर्द-गिर्द चक्कर लगाने लगता है। बीच दरिया में एक सूम ज़रा उछलकर घूमकर फिर पानी में डूबकी लगाता है। पटवारी, बिसेसर, रामरतन और केशो सरजू को घेर कर, खड़े हो जाते हैं। बैतुल ने देखा, दूर, भुट्टा के खेतों को लाँघकर झालो फुलबसिया और गणेसिया इधर ही आ रहे हैं। सब आये हैं पर आज

उसके करखनिया बेटे का कोई पता नहीं।

"एतना चिल्ला-चिल्लि कियों भाई ?" सा'ब कहते हैं—"केबोल पाँच छय ठो तो लोग हाय !"

"सा'ब सरकारी कानून है," सरजू हाथ जोड़ता है, "कानून में आवाज़ लगाना लिखा है।"

"ठीक हाय—ठीक हाय सोरजू, आब आरनेस्ट मनि···" सा'ब नाव से चिल्लाये।

"आप निश्चिंत रहें सा'ब···" सरजू ने साहब को आश्वस्त किया—"हाँ भाइयो नीलामी के पहले 'आरनेस्ट मनि' पचास रुपया जमा करें। नीलामी के बाद इसे लौटा दिया जायेगा। साथ-साथ नाम, पिता का नाम, पता··।"

सबसे पहले पटवारी जैसुख आगे आता है। पचास रुपया सरजू के हाथ रखता है। अपना नाम, पिता का नाम, पता लिखवाता है। रसीद लेता है फिर पीछे जा खड़ा होता है।

फिर बिसेसर, फिर रामरतन, फिर केशो। रसीद लिखते-लिखते सरजू बैतुल की ओर देखता है। शायद इशारा भी करता है। आखिर में बहुत धीरे-धीरे लाठी के सहारे बैतुल उठता है, सरजू की ओर बढ़ता है···।

"नाम बैतुल मांझी, बाप का नाम—"

"ठीक है, ठीक है," सरजू उसे आश्वस्त करता है—"पुराने रिकार्ड में सब दर्ज है।" बैतुल धीरे-धीरे अपनी जगह पर लौट जाता है।

"और कोई है बोली लगाने वाला···आ···आ··आ···।" सरजू का धँसा सीना फिर उभरता है। गले और ललाट की नीली नसें फिर उभरतीं हैं। आवाज किसी तेज हथियार की तरह शाँत गंगा तीर को बेध सी जाती है।

कोई कुछ नहीं बोलता। मायागंज घाट पर जैसे आँधी से पहले की सी खामोशी छा जाती है। साथ ही धीरे-धीरे गाँव की ओर से दो-दो, चार-चार की टोली आकर भीड़ का आकार ले लेती हैं। लेकिन भीड़ एकदम चुप्प। ऊपर मंदिर के घंटे की आवाज भी अब सुनाई नहीं देती। सबकी

निगाहें बूढ़े सरजू किरानी पर टिकी है ।

"ऑक्शन शुरू सोरजू···" नाव से साइब जैसे बंदूक दागते हैं।

"नी—ला—मी—शुरू···ऊ···ऊ,···" एक बार फिर सरजू चिल्लाता है । अबकी बार चिल्लाते वक्त उसकी एड़ियाँ ज़मीन से ऊपर उठ जाती हैं, चेहरे पर पसीने की बूंदें चूहचूहा आती हैं ।

पल भर के लिए मौत जैसा सन्नाटा । कहीं से कोई आवाज़ नहीं ।

"बक···बकुम···बक··बकुम···" मंदिर के गुम्बद पर आ बैठे कबू-तरों के जोड़े जब उस हिम शीतल सन्नाटे को बड़ी मासूमियत से तोड़ते हैं तो सबको जैसे होश आता है । भीड़ से एक मृदु गुंजन उठता है ।

"दो सौ रुपये···" पटवारी की आवाज़ सबसे पहले गूँजती है। बैतुल के सीने पर यह हाँक जैसे तोप की गोली की तरह लगता है। पटवारी ने उसे कहीं का नहीं रखा । शुरू से ही रेट बढ़ाकर उसे बैठाना चाहता है । पिछले साल तो कुल बोली दो सौ पच्चीस तक ही पहुँची थी । हे भगवान···!

"दो सौ दस···" केशो बोला ।

"दो सौ बीस···" बिसेसर चिल्लाया ।

"मैं नहीं हूँ भाई···" रामरतन बोला और भीड़ के पीछे छुप गया। फिर वहीं से उसकी आवाज़ आई···"जमा पचास रुपये लौटा दो ।"

"बाद में, बाद में" सरजू बोला । फिर चिल्लाया—"दो सौ बीस ! दो सौ बीस !! बोलो भाई, बोलो—बैतुल माँझी—हाँको··।"

"दो सौ पच्चीस !" बैतुल बोला ।

"दो सौ पच्चीस !!" सरजू चिल्लाया ।

"दो सौ पचास !!" बिसेसरा साहब की ओर देखकर फिर बोला—"दो सौ पचास सर !"

"दो सौ पचास !" सरजू चिल्लाया "मायागंज घाट का नीलामी—दो सौ पचास !!"

···न, आज बिसेसर और पटवारी जैसे कमर कस कर आया है । न जाने किस जनम के दुश्मनी का बदला आज चुकाएगा । बैतुल के पाँव

की कमजोर शिरायें उसके शरीर का भार अब जैसे सह नहीं सकतीं। बैतुल बैठ जाता है। हाथ की लाठी को बगल में रखता है। एक-एक कर फुलवसिया, झालो, गणेसी की ओर देखता है। फिर बैठे-बैठे चिल्लाता है—"दो सौ साठ !"

"तीन सौ !" बिसेसर।

"तीन सौ !!" सरजू चिल्लाता रहता है—"तीन सौ···तीन सौ ·"

बैतुल के कंठ के पास न जाने क्या अटकता है। सीने के बाईं ओर तीर की तरह एक दर्द चुभता है। चेहरे की नसें तन सी जाती हैं। आँखें खुद-ब-खुद बुझ जाती हैं पल भर के लिए। आँखों के सामने बाप-दादा की तस्वीर एक-एक कर उभरती है। फिर बाप-दादा के चेहरे अनंत जल-राशि में डूब जाते हैं। कानों में लहरों चपल शोर गूँजता है, माँझियों के गीत गूँजते हैं और आँखों के सामने मेघ का जामा पहने नीला आकाश उभरता है। फिर जाने क्यों सब कुछ गड़बड़ होने लगता है।

"मामू···चाँदी का तागा बेच आये हैं," फुलबसिया बैठकर कान के पास फुसफुसाती है—"हाँको, मेरे और गणेसी के पास दो सौ हैं !"

"बापू, सास की चाँदी की करधनी बँधक रख आये हैं !" झालो कहती है—"डेड़ सौ मेरे पास हैं !"

आह ! लगता है, शीतल हवा का झोंका शरीर को छूकर बह गया है। बैतुल की बुझी आँखें खुलती है। धीरे से कहता है—"तीन सौ दस !"

"तीन सौ पचास।" बिसेसर फुलबसिया को देखकर एक क्रूर हँसी हँसता है।

"तीन सौ साठ !" बैतुल।

"चार सौ !" पटवारी।

"चार सौ पाँच !" बैतुल।

"चार सौ पचास !" बिसेसर।

"···चार सौ पचास !" सरजू चिल्लाता है—"बोलो भाई चार सौ···।"

सा'ब कुछ क्षण पहले तक अनमने से नाव पर बैठकर पाँव हिलाते हुए सिगरेट पी रहे थे। अब उनका पाँव हिलाना बंद हो गया। एक

के बाद एक लगातार सिगरेट का कस लगाते हैं। फिर अचानक कूदकर नाव से उतरते हैं।

सरकारी कानून बड़ा कड़ा है। चाहकर भी सा'ब बैतुल के पास नहीं आते हैं। थोड़ा फासला रखकर, बहुत ही मुलायम, स्नेहिल हँसी हँसकर कहते हैं—"हाँको भाई, तुम बोहोत पुराना माँझी···जिल बोर्ड के रिकार्ड में सोब लिखा हाय···हाँको, अपना बाबा, ठाकुर दादा का घाट काहे छोड़ेगा ! आँय !···" फिर चारों ओर देखते हुए, जैसे पक्षपात के आरोप से बरी होने के लिए कहते हैं—"आप सोब भी हाँकिये ! तभी तो ऑक्सन का मजा है !"

बैतुल के सीने का दर्द अब जैसे धड़कनों को थमाना ही चाहती है। बैठे-बैठे, अधबुझी सी, एहसान भरी नज़रों से साहब की ओर देखते हुए वह चिल्लाता है। "चार सौ पिचहत्तर !"

"पाँच सौ !" बिसेसर का ठहका गूँजता है। एक हलचल सी होती है भीड़ में। मायागंज घाट का बोली कभी इतना नहीं उठा। आवेश, उत्तेजना से दर्शकों के चेहरे स्थिर चित्र बन जाते हैं। फिर एक वक्त आता है, जब सब शाँत हो जाते हैं। सिर्फ सरजू की नीरस आवाज़ गूंजती रहती है—"पाँच सौ · पाँच सौ···।"

सा'ब कागज कलम लेकर, फिर उछल कर नाव पर जा बैठते हैं। अबकी होठों से नयी सिगरेट दबाकर, सिगरेट सुलगान भूल जाते हैं। केवल एक टक बैतुल को देखते हैं।

"···बोलो भाई पाँच सौ एक···पाँच सौ दो···"

"पाँच सौ दस !" बैतुल को लगा, उसके सीने में छुपा—उसका बाप, हरिया माँझी, आखिरी बार अपने बेटे, खानदानी पेशा, यह घाट और गंगा मईया की इज्जत बचाने के लिए बोल रहा है।

"साढ़े पाँच सौ।" बैतुल की धीमी आवाज डूब गयी बिसेसर की गमकती आवाज में।

···बहुत प्यास लगी है पर कंठ से आवाज भी तो नहीं फूटता ! कहाँ है करखनियाँ बेटा ! बैतुल माँझी, हरिया माँझी की इज्जत आज ठेके पर है। सिर्फ बैतुल माँझी की ही नहीं, जैसे गंगा मईया का भी !

बैतुल के अलावा और कोई हर सुबह गंगा मईया की पूजा करेगा क्या ? नाव के आगे सर नवायेगा क्या ? जी जान से वक्त पर फेरी लगायेगा क्या?

"…साढ़े पाँच सौ एक…साढ़े पाँच सौ एक…" सरजू की उत्तेजित आवाज़।

…मंझधार के ठीक ऊपर, नीले नभ में एक सफेद चिड़िया लगातार चक्कर लगा रही है। लगता है नीले बिस्तर पर लोट रही है यह चिड़िया।

"साढ़े पाँच सौ दो साढ़े पाँच सौ दो…" सरजू की आवाज़ अब फटे बाँस में भरे फूंक की तरह लगती है।

…बैतुल को लगता, शाँत लहरें अचानक अशाँत हो उठी है। दूर बँधी अपनी नइया को वह लहरों पर हिचकोले खाता देखता है। फिर अचानक नइया धुंधला जाती है।…घाट, रेत, मिट्टी, आवाज, लहरें, सब एकाकार हो जाते हैं…दर्द का सैलाब सीने में उठता है और आँखें मरी हुई मछली की तरह सफेद निष्पंद हो उठती हैं। सब कुछ धुंधला-धुंधला-सा लगता है पर आश्चर्य आँखों के सामने बाप हरिया और दादा कारिया न जाने कहाँ से अचानक आ खड़े होते हैं…

"साढ़े पाँच सौ तीन !!!…" सरजू एलान करता है।

…मंझधार के ऊपर उड़ती सफेद चिड़िया पर जैसे किसी ने गोली दाग दी हो और वह झुप्प से पानी में गिर पड़ा हो।…स्तब्ध हो जाता है सब कुछ। लुढ़क जाता है बैतुल रेत पर, अपनी गंगा मईया की गोद में। अधखुला मुँह आकाश की ओर उठ जाता है। तनी-बंधी मुट्ठियों के बीच से सूखी रेत रिस-रिस कर बाहर गिरती रहती है। सीना धौंकनी की तरह उठता-बैठता है, और फिर बैठा ही रहता है। थम जाती है धड़कनें।…बैतुल माँझी की नाव लहरों पर थिरकती रहती है।… लगता है, उसकी नाव उसके स्पर्श के लिए बेचैन है और जैसे उसी नाव पर बैठकर बैतुल को एक अनंत दूरी तय करनी है।

दो

"तब भाई निखिल !" मेज के उस पार राजनैतिक संवाददाता और समीक्षक सनत मेहता, बियर का गिलास होठों से लगाकर बोले— "तुम पर संपादक महोदय की विशेष कृपा है। तुम अपने अखबार के लिए एच० एल० परदेसी का चुनाव कवर करने मायागंज भेजे जा रहे हो !"

प्रेस क्लब में आज ज्यादा भीड़ नहीं थी। फिर भी रोज़ आने वाले जो जहाँ जिस मेज पर बैठते हैं; बैठ चुके थे। निखिल रोज़ प्रेस क्लब आता हो, ऐसी बात नहीं। पर पेशेगत हितों को ध्यान में रखकर, अक्सर न चाहते हुए भी राजधानी के अखबार-नबीसों के इस क्लब में आना ही पड़ता है। विभिन्न अखबार और न्यूज एजेंसियों से सम्बद्ध हर आम और खास, हर शाम एक चक्कर प्रेस क्लब में लगा जाता है। राजधानी में यह कहावत मशहूर है—"दिन भर झक मारो और शाम को प्रेस क्लब में आकर न्यूज़ बनाओ।"

"चुप क्यों हो भाई ?" मेहता साहब सिगरेट का पैकट निखिल की ओर बढ़ाते हुए बोले—"तुम तो बगुला भगत हो। बियर पियोगे नहीं। सिगरेट ही पियो और—"

"भाड़ में जाय आपका सिगरेट मेहता साहब···" सिगरेट को भाड़ तक भेजने की बात करने के बाद भी निखिल ने एक सिगरेट निकालकर, सुलगाकर कहा—"आप सब ने—आप ने ही मुझे फंसाया है—"

"उत्तेजित नहीं होते बरखुदार !" अनुभवी पत्रकार मेहता साहब एक ही घूंट में बियर का गिलास खाली करते हुए बोले—"मैंने रिपोर्टिंग करनी छोड़ दी है, अतः मेरे जाने का सवाल ही नहीं उठता। तुम लोग जवान हो, जोश-खरोश है तुम लोगों में—"

"मेहता साहब, आपने ही संपादक महोदय से मेरी सिफारिश की होगी—"

"ज़रूर—ऑफकोर्स। किसी की सिफारिश करना गलत काम तो नहीं है !" वगैर पलक झपकाये, बिलकुल सीधे निखिल की आँखों में झाँकते हुए बोले—"बरखुदार, मैं चाहता हूँ, इस घटिया पेशे में जब तुम जैसा एक शरीफ भटककर आ ही गया है तो इस पेशे से तुम अब वाकिफ हो ही जाओ अच्छी तरह।"

"ठीक है, जहाँ भेजना है, भेजिए मुझे," निखिल उत्तेजित होकर बोला—"मैं सच और सही रिपोर्टिंग करूँगा—ट्रूथ—"

"ट्रूथ ? सच ?" मेहता साहब का ठहाका गूंजा—"सच्चाई जैसी कोई चीज़ इस देश के अखबार वालों के पास है भी ?···ट्रूथ !···हा··· हा···हा·· सच्चाई ?··हा··हा··।"

"आज आप ज़रा ज्यादा 'हाई' हो रहे हैं," निखिल उस बेतुके ठहाके को झेलता हुआ बोला—"आप अपनी ही जड़ काटने पर तुले हुए हैं—"

"भाई निखिल, काटना नहीं तो कभी-कभी अपनी जड़ उलट-पुलट कर देखना अच्छा ही लगता है···कम से कम खुद के सामने अपने को ईमानदार तो बनाये रखा जा सकता है !"

"खुदा के लिए पहेलियों में बातें न कीजिये !"

"तुम मुझे आज एक भाषण देने के लिए 'प्रोवोक' कर रहे हो निखिल !" सनत मेहता फिर हँसे—"वैसे आज हाथ में जाम है, सामने तुम हो ही और हाथ में जाम लिए शायद ही कोई झूठ बोलता है—"

"आप नशे में नहीं हैं मेहता साहब।" निखिल को हँसी आ गई—"जहाँ तक मैं आपको जानता हूँ, आज आप कोई खास बात कहने से पहले, नशे में होने का बहाना कर रहे हैं; ताकि बाद में अल्फाज को अस्वीकार कर सकें !"

"वाह बरखुरदार ! दाद देता हूँ तुम्हारी ! भले ही कहने लायक कुछ न हो पर तुम कहलवा के ही छोड़ोगे।"

"ऊँ हूँ ! पहले भी आप यहीं बैठकर काफी कुछ मजेदार किस्से सुना चुके हैं। मेरी ट्रेनिंग आप ही के हाथों हुई है न ! मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ।" निखिल मुस्कुराया।

मेहता साहब एक सिगरेट सुलगाकर, गहरा कश लेकर कहीं खो गये।

"...दस बारह साल वाकया है। तब अपनी कंपनी के पास यह सत्रह मंजिली शानदार इमारत नहीं थी। अखबार का मालिक इतना बड़ा इंडिस्ट्रियलिस्ट भी नहीं बना था तब। हाँ, उन्होंने अपने पर फैलाने शुरू कर दिये थे। उनका सीमेंट का कारखाना खुल चुका था! विदेश से ट्रैक्टर आयात करने का लाइसेंस उन्हें मिल चुका था। भारत तब इलेक्ट्रॉनिक युग में प्रवेश करने जा रहा था। जटिल इलेक्ट्रॉनिक यंत्र आयात करने का लाइसेंस भी परिवार के दूसरे सदस्यों के नाम उन्होंने ले लिया था। उनका टायर बनाने का कारखाना खुला ही खुला था तब...और मैं अपने प्रांत के टूरिस्ट ब्यूरो में इनफॉर्मेशन ऑफिसर की नौकरी छोड़कर तब सहायक संपादक की नौकरी से जुड़ा ही जुड़ा था।"

"...अचानक इलाहाबाद में दंगे भड़क उठे। मुझे उसे कवर करने भेजा गया। हमारे देश में साम्प्रदायिक दंगे कोई नई बात नहीं है। हम सब, खासकर अखबार वाले, यह अच्छी तरह जानते हैं—अधिकतर दंगे होते नहीं, करवाये जाते हैं; मुट्ठी भर साम्प्रदायिक लफंगों द्वारा इन दंगों के पीछे गहरी राजनैतिक साज़िशें रहती हैं।'हिंदुराज' का एक उग्रवादी सपना भी काम करता है; अखंड भारत का हौवा भी सिरफिरे साम्प्रदायिक लोगों को भड़काता है।...निखिल, तुम यह जान लो, इस देश में साम्प्रदायिक दंगों के पीछे, कुछ ही, बस कुछ ही सिरफिरे लोगों के हाथ रहते हैं, और इन्हीं कुछ उग्रवादी, अनुदार लोगों के षड्यंत्र का शिकार हज़ारों, लाखों मासूम जाने होती हैं।

"...मैं या हमारा अखबार इस साम्प्रदायिक राजनीति के एकदम खिलाफ थे। उन दिनों शिवेश्वर प्रसाद संपादक थे। शिवेश्वर एक उदार, निडर, निष्पक्ष, उसूलों के पक्के और कुशल संपादक थे।...खैर, एक दिन इलाहाबाद के एक इलाके का दौरा करने के बाद, पता चला इस इलाके में दंगों की पूरी जिम्मेदारी मुट्ठी भर लफंगों की थी। अल्पसंख्यक समुदाय के घरों की कतारें जलकर स्वाहा हो गई थीं। पचासों अल्पसंख्यक

समुदाय के लोग मरे थे; सैकड़ों घायल हुए थे।...अपनी रिपोर्ट मैंने पूरी
ईमानदारी से शिवेश्वर प्रसाद के पास भेजी थी। और शिवेश्वर जी ने
एक भी शब्द हटाये, उसे पहले पेज़ पर दाईं ओर, 'सेकेंड लीड' न्यूज़
बनाकर छाप दिया था।"

"जब मैं दिल्ली लौटा, तहलका मच चुका था। रेडियो पाकिस्तान
ने अपनी न्यूज़ में उस समाचार का विस्तार से हवाला दिया था। समा-
चार समीक्षा में उसी समाचार का और अखबार का हवाला देकर यह
गैर जिम्मेदाराना निष्कर्ष निकाला गया था कि भारत में अल्पसंख्यकों
का कत्लेआम हो रहा है।"

..."दिल्ली पहुँचते ही एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण नेता की ओर से
बुलावा आया था; मेरे और शिवेश्वर प्रसाद के नाम। मैं जरा घबड़ाया
पर शिवेश्वर जी ज़रा भी विचलित नहीं हुए। विचलित वे होते भी नहीं
कभी। एक जमाना था, जब वे खुद समाचार लिखते, खुद कम्पोजिटरों के
साथ कम्पोज करते, और मशीनमैन के साथ मिलकर अखबार छापते।
अखबार के जन्म से ही वे इससे जुड़े हुए थे। शिवेश्वर जी बताते, वह
ज़माना आज़ादी की लड़ाई का ज़माना था। तब अखबार का मालिक,
'न्यूज पेपर टाईकुन' या सेठ या 'इंडस्ट्रियलिस्ट' नहीं, बल्कि एक मामूली
देश सेवक समझे जाते थे। बहरहाल उस दिन उस महत्त्वपूर्ण मंत्री महो-
दय से मिलने के लिए हमें केवल पंद्रह मिनट इंतज़ार करना पड़ा था।

...औपचारिकता निभा लेने के बाद मंत्री महोदय ने सीधे
शिवेश्वर जी से सवाल किया था—"पिछले वर्ष आपके अखबार को
सरकार की ओर से कितने रुपयों का विज्ञापन मिला था ?"

"जी...यह कोई दस-बारह लाख रुपयों का..." शिवेश्वर जी ने
थोड़ा रुककर कहा था—"ठीक से याद नहीं, थोड़ा कम भी हो सकता
है !"

"क्या यह राशि बहुत कम है शिवेश्वर जी ?"

"जी ?"

"मैं कहता हूँ देश का कौन सा अखबार इतने रुपयों का विज्ञापन
सरकार से पाता है ?"

"हमारे अखबार को छोड़कर देश का कौन-सा अखबार इतने घरों तक पहुँचता और चर्चित होता है ?"

"क्या आप प्रसार को ही सरकारी विज्ञापन के आबंटन का आधार समझते हैं ?" मंत्री महोदय हँसे—"सरकार चाहे तो उस अखबार को भी सबसे ज्यादा विज्ञापन दे सकती है, जिसका प्रसार निम्नतम है। सरकार स्वस्थ पत्रकारिता को बढ़ावा देती है, चाहे उसका प्रसार कितना ही सीमित क्यों न हो ! समाज और जनकल्याण सरकार के आदर्श हैं। सनसनीखेज समाचारों में सरकार और उसके विज्ञापन की कोई दिलचस्पी नहीं।"

"अर्थात," शिवेश्वर जी अब ज़रा सामने की ओर झुक आये थे—"ऐसी स्थिति भी आ सकती है, जब हमारा अखबार सरकारी विज्ञापन से वंचित होगा !"

"ना···आ···हीं··ई," मंत्री महोदय अब अपनी कुर्सी पर पसर गये थे—"ऐसी कोई खास बात नहीं पर आपको पता है, देश के कुछ बड़े-बड़े अखबारों को कुछ अर्से के लिए सरकारी कृपा से वंचित रहना पड़ा था।"

"हमें धमकी देने के लिए आपने यहाँ बुलाया है ?" शिवेश्वर जी नाराज हो उठे थे।

"नहीं," मंत्री महोदय भी आवेश में आ रहे थे—"आपसे यह निवेदन करना चाहूँगा, प्रेस को चाहिए वह देश निर्माण में सरकार का हाथ बँटाये। आप अगर हर-हमेशा हमारी खामियाँ ही गिनते रहेंगे तो तो···।"

"तो ?"

"···तो सरकार यह बर्दाश्त नहीं करेगी।"

"मैं कुछ कहने ही जा रहा था पर शिवेश्वर जी ने मुझे रोका। एक विशाल वट वृक्ष की तरह शिवेश्वर जी अपने जूनियरों को छाया भी प्रदान करते थे। बहरहाल, मैं समझ गया था, मंत्री महोदय कहना क्या चाह रहे हैं।··प्रेस अगर सरकार का पिछलग्गू बना रहे तो प्रेस की समृद्धि बढ़ती जायेगी, निरंतर। प्रेस अगर सरकार के खिलाफ

जायेगी तो सरकार चुप नहीं बैठेगी। सरकार के पास जो भी हथियार है वह उसका इस्तेमाल करेगी।···आजाद हिंदुस्तान के तथाकथित आजाद प्रेस की कैसी दयनीय हालत थी यह !"

"आपने हमें आज किसलिए बुलाया है ?" शिवेश्वर की छड़ी फर्श से लगातार टकरा रही थी—"आप कहना क्या चाहते हैं ?"

"इलाहाबाद के दंगों पर आपकी रिपोर्ट गलत थी। गैर ज़िम्मेदाराना भी।" मंत्री महोदय ने साफ कहा था।

"आपसे शायद गलती हो रही है," शिवेश्वर प्रसाद ने मुझे चुप कराते हुए खुद कहा था—"मेरे संवाददाता की रिपोर्ट की सच्चाई को जाँचकर ही मैंने उसे छापा था।"

"ग़लत !" मंत्री महोदय गंभीर दिखे थे—"उस इलाके में दंगों की जिम्मेदारी बहुसंख्यक संप्रदाय की नहीं थी। बहुसंख्यक संप्रदाय के लोग मरे भी ज्यादा थे।"

"साहब !" मैं तब शायद हकलाया था—"गली-गली चक्कर लगाकर, पचासों बहुसंख्यक परिवार से बातें करने के बाद, मैंने वह रपट फाइल की थी···।"

"इस बात की क्या गारंटी है कि आपको बहकाया नहीं गया ?" मंत्री महोदय की आवाज़ में तल्खी थी—"क्या सूबत है आपके पास इस इल्जाम का कि आपने पक्षपात पूर्ण रिपोर्टिंग की है ?"

मैं घबड़ाया। मुझसे कुछ कहते नहीं बना।

"आप···आप लोग यह जानते हैं कि," बड़ी तेजी से अपनी मेज पर वे एक पेपरवेट घुमा रहे थे—"दुनियाँ में पाकिस्तान नाम का एक मुल्क 'एगजिस्ट' करता है !"

"···और वह मुल्क इस 'सेनसिटिव' मामले पर हिंदुस्तान को दुनियाँ में बदनाम करने का कोई भी मौका नहीं चूकता है···।" मंत्री महोदय बहुत ही अशांत, अस्थिर दिखे थे।

"जी, लेकिन—"

"लेकिन यह सब जानते हुए भी आप सब क्यों और कैसे ऐसे समाचार छापने की जुर्रत कर सकते हैं जो पाकिस्तान के लिए भारत को

बदनाम करने का मजबूत या पोख्ता हथियार हो ?" मंत्री महोदय बरस पड़े थे—"देखिये ये रहे दुनियाँ भर के अखबारों की कतरने तथा पाकिस्तान के दोस्त मुल्कों के रेडियो-रिपोर्ट को कतरनें...।"

मेज पर हमारे सामने एक के बाद एक अखबार और रिपोर्टों की कतरने बरसी थीं।

"क्या यह देश के हित में है ?" उन्होंने शिवेश्वर जी से पूछा था।

"लेकिन यह सच्चाई है—"

"सच्चाई ? ट्रूथ ?" मंत्री महोदय बिफर पड़े थे—"कैसी सच्चाई ? किसके हित में यह सच्चाई है ? हिंदुस्तान जैसे एक विशाल मुल्क का स्वार्थ अगर ऐसी छोटी सी अर्थहीन सच्चाई से डगमगाता है तो हमें नहीं चाहिए ऐसी सच्चाई—"

"हमें चाहिए ऐसी सच्चाई।" शिवेश्वर जी ने सीधे मंत्री महोदय की आँखों में झाँककर, एक-एक शब्द तौलकर कहा था—"महामहिम, लोगों को बुलाकर, उन्हें बोलने का मौका न देना और खुद ही बोलते जाना एक मंत्री के लिए शोभनीय नहीं है।...जरा सुनिये, मेरी शिक्षा, मेरी दीक्षा बापू के कदमों पर बैठकर हुई थी। बापू कहते थे, सच्चाई से डरो नहीं, चाहे उसके लिए कितना ही नुकसान क्यों न उठाना पड़े। मैं आज भी गाँधीवादी हूँ। आप लोगों की तरह भ्रष्ट नहीं हुआ हूँ। अखबार लोकतंत्र की जान है। हमारा काम शासक गोष्ठी की ग़लतियों की ओर इशारा करना भी है; आप लोगों की उस खफागी की परवाह किए वगैर।...उस देश में लोकतंत्र की जड़ें कभी गहरी नहीं हो सकती, जहाँ अखबार अपनी आजादी त्यागकर, सरकार के कंठ से कंठ मिलाकर, गीदड़ की तरह चिल्लाये।"

शिवेश्वर जी एक बैग उठे थे। मैं भी उठ खड़ा हुआ था।

..."मैं संपादकीय नीति आपसे नहीं सीखना चाहता। आप जैसों से जो गाँधीवाद, लोकतंत्र और समाजवाद के नाम पर एक भ्रष्ट, दोगली समाज व्यवस्था भारतवासियों पर थोपना चाहते हैं।"

निखिल चुपचाप मेहता साहब को सुन रहा था। आया था वह प्रेस क्लब पाँच-दस मिनटों के लिए पर घंटा गुज़र गया। पर अफसोस

की कोई बात नहीं। मेहता साहब ऐसे मूड में बहुत कम होते हैं। आज गड़े मुर्दे उखाड़ने पर तुले हुए हैं।

"पर मेहता साहब, शिवेश्वर जी ने तो त्यागपत्र दे दिया था और—"

"बरखुरदार, शिवेश्वर जी ने त्यागपत्र नहीं दिया था," मेहता साहब ने निखिल की आँखों में झाँका—"बल्कि मालिकों की ओर से उनसे त्यागपत्र दिलवाया गया था और त्यागपत्र देने के महीने भर के अंदर ही दिल के दौरे से उनकी मौत हुई थी।"

"···यहीं से हिंदुस्तान के अखबारों की आजादी के पतन की शुरूआत होती है।···पूंजीवादी अर्थव्यवस्था, शासन तंत्र में अपना पंजा फैलाता है और अखबारों के मालिक अमरीकी 'न्यूज पेपर टाइकुन' की तरह धनकुबेर बनने का सपना साकार होते देखना शुरू करते हैं।··· अखबारों के मालिक बड़े-बड़े उद्योगों में पूंजी लगाना शुरू करते हैं। 'मल्टी नैशनल्स' के साथ कोलेबोरेशन शुरू होता है। उन्हें बिजली, पानी पूंजी, ज़मीन नाममात्र कीमत पर शासकों की ओर से मिलना शुरू होता है। आता है लाइसेंस, परमिट, कोटा का ज़माना। और अखबारों के मालिक इन सुविधाओं के बदले अखबारों की आज़ादी बेचते हैं।···सत्ता और व्यवस्था के इशारे पर अखबार के संपादक बहाल और बर्खास्त किये जाते हैं···।"

"बरखुरदार, शिवेश्वर जी के उस अंजाम से मैंने क्या सीखा जानते हो?"

"क्या मेहता साहब?"

"सरकारी सच ही सच्चाई है। बाकी सब झूठ है। इतना ही नहीं। कभी-कभी सरकार में समर्थ और शक्तिशाली गुटों के झूठ भी 'सरकारी सच' से ज्यादा सच होता है। कमजोरों का सच अर्थहीन है। सत्ता की असली बागडोर नकली नहीं, जिनके हाथ हैं, वे सत्य हैं, शिव हैं, सुन्दर हैं।"

"आप मुझे क्या सुझाव देते हैं मेहता साहब?" काफी देर तक खामोश रहने के बाद निखिल ने पूछा—"खासकर मायागंज के इस

चुनाव के संदर्भ में ?"

"निखिल," मेहता साहब विचलित देखे—"तुम संवाददाता बनने के काबिल नहीं हो।···अरे भाई, इस मुल्क में सत्ता की बागडोर किनके हाथों हैं ? क्या जनता के हाथों, जो पाँच वर्ष में एक बार एक डिब्बे में ठप्पा लगाकर कागज़ का एक टुकड़ा फेंकते हैं ? क्या जानती—समझती है लोकतंत्र के विषय में यह जनता ? समाजवाद, पूंजीवाद, नक्सलवाद—इन नारों का क्या अर्थ समझती है हिंदुस्तान की जनता ?···वे वोट देते हैं, गाँव या शहर के पूंजीपती, उद्योगपति, अपनी ज़ाति के धनी नेता, और भूमिपतियों के इशारे पर। सत्ता पर चाहे जिस भी पार्टी का झंडा फहरा रहा हो। यह मुल्क दरअसल उद्योगपतियों, भूमिपतियों और मुट्ठी भर बिके हुए बुद्धिवादियों द्वारा शासित होता आया है; होता आयेगा···वोट उनके प्रतिनिधि के बक्सों में ही गिरेंगे, चाहे लाठी की ज़ोर से, चाहे बंदूक की ताकत से—"

"लेकिन मेहता साहब—"

"कोई लेकिन-वेकिन नहीं निखिल—" मेहता साहब अपनी कुर्सी से उठते हुए बोले—"ताकत है, जोश है, और आदर्शों के प्रति समर्णण है तो भिड़ जाओ। वर्ना चुपचाप नौकरी किए जाओ—मेरी तरह कायर बनकर···फायदे भी हैं चुपचाप नौकरी करते जाने में।··· तरक्की, विदेश यात्रा, ऊँचे कनेक्शन, सत्ताधारियों का सान्निध्य आदि।" निखिल खामोश रहा।

"आज भी हिंदुस्तान में उसूलों के प्रति मर-मिटने वाले अखबार हैं, संपादक-पत्रकार हैं, पर उन्हें उँगलियों पर गिना जा सकता है। फिर भी उन मुट्ठी भर समर्पित संपादक-पत्रकारों को देखकर खुशी होती है··· उन्हें देखकर यह एहसास सीने में बल भरता है कि साठ-पैंसठ करोड़ों का देश नपुंसक नहीं है।"

मेहता साहब के साथ निखिल भी उठता है। वे दोनों साथ-साथ प्रेस क्लब से निकल पड़ते हैं। निखिल भी मेहता साहब की गाड़ी में जा बैठता है। गाड़ी राजधानी की सड़कों पर रेंग चलती है। मेहता साहब चुपचाप ड्राइव करते रहते हैं।

० ० ०

जहाज की प्रॉपेलर पानी की धारा को बड़ी तेजी से काट रही थी। उगते सूरज की किरणें उस टूटती जलराशि पर पसर सी रही थी। निखिल को लग सकता था असंख्य रंगीन लड़ियाँ टूट-टूट कर गंगा में गिर रही हैं। पर उसे ऐसा नहीं लगा। निखिल बोली हँकवाने वाले उस बंगाली बाबू की तरह भावुक नहीं है। दरअसल जब से उसने अपनी अखबार के दफ्तर में मायागंज संसदीय उपचुनाव को कवर करने के लिए उसे भेजे जाने की बात सुनी थी, तभी से वह बोर हो गया था। हालाँकि मेहता साहब ने उसे बार-बार उत्साहित किया था, फिर भीएक ऐसे गाँव में आकर रहना, जहाँ अभी तक बिजली नहीं पहुंची है, पक्की सड़कें नहीं है, रिपोर्ट फाइल करने के लिए मीलों चलकर पोस्ट ऑफिस पहुँचना पड़ेगा—ऐसी जगह आना निखिल के लिए बहुत तकलीफ देह की बात होगी।

मेहता साहब ठीक ही कहते हैं। अखबार का दफ्तर भी कमाल है। जिनकी पहुँच है वे लंदन···पेरिस जाते हैं और जिनकी पहुँच नहीं है, उन्हें चुनाव 'कवर' करने मायागंज भेजा जाता है। बहरहाल···।

मायागंज से निखिल बहुत ज़्यादा परिचित हो, ऐसी बात नहीं। परिचय केवल गाँव के एक छोकरे, परमेश्वर से है। उसी का एक रिश्ते-दार—एच० एल० परदेसी—धाँसु उम्मीदवार है इस चुनाव में। उन्हीं के जीतने की उम्मीद बतायी जाती है। खैर, कोई जीते, कोई हारे, निखिल को इससे लेना एक, न देना दो।···आठ, दस दिन गाँव में गुजा-रने होंगे। परमेश्वर रहने के इंतजाम कर ही देगा। गुज़र जायेंगे दिन किसी तरह। अखबार नवीसी जाय भाड़ में।

जहाज घाट पर परमेश्वर दूर से ही दिख गया। जहाज भिड़े इससे पहले ही निखिल उछलकर, पानी पर तैरते, हमेशा खड़े और प्लेटफॉर्म की तरह इस्तेमाल होने वाली जहाजनुमा 'डेक' पर आ गया।

"बड़ी बोर भई यार!" कंधे पर झोला लटकाकर, सूटकेश हाथ में लेकर निखिल बोला—"एक कप अच्छी चाय, फटाफट कहीं मिल सकेगी?"

"अच्छी चाय ?" निखिल से हाथ मिलाकर परमेश्वर बोला—"देखो कोशिश करता हूँ। आओ मेरे साथ !"

एक कतार में कई 'पवित्र हिंदु भोजनालय' और 'पवित्र वैष्णाव भोजनालय' खड़े थे। उनकी कतार लाँघने के बाद चाय की दूकान दीख गयी। दूकान के बाहर, एक चूल्हे पर मझौले किस्म की एक कढ़ाई रखी थी। पास ही एक अधेड़ किस्म का आदमी एक डेकची में बेसन और प्याज़ से बनी कचरी कढ़ाई में रखता जा रहा था। अर्थात गर्म-गर्म कचरी तली जा रही थी। कढ़ाई की बगल में एक छोटी सी, कालिख से लिपटी केतली रखी थी। चूल्हे की आँच का एक टुकड़ा उस केतली को गर्मा रहा था।

"चाय मिलेगी राधे राम ?" दूकान के पास आकर उस अधेड़ आदमी से परमेश्वर ने पूछा।

"हाँ सरकार···" राधे राम ज़रा हड़बड़ाया—"बैठा जाये हाकिम ···अभी अभी चाय देता हूँ।"

"दूकान के अंदर नीम अंधेरा था। मेज वगैरह कुछ भी न थी। महज दो वेंच बिछे थे।

चार-पाँच छोकरे, बहुत ही ऊँची आवाज़ में बहस में लगे थे। उनकी बातों से जाहिर था, वे उसी क्षेत्र के उपचुनाव के बारे में बातचीत कर रहे थे। परमेश्वर और निखिल को देखकर वे चुप हो गये।

पाँच में से दो छोकरे गाँव में डोमन पंडित जी की पाठशाला से आठवीं जमात पास कर औरों की तरह शहर न भागकर, गाँव में ही अपनी-अपनी खेती से जुड़ गये थे। ये दोनों लड़के स्वयं को जरा विशिष्ट समझते थे क्योंकि ये दोनों अखबार पढ़ सकते थे और देश-गाँव की राजनीति पर थोड़ा बहुत बतिया सकते थे। उनमें से तीसरे जहाज घाट के टिकट बावू थे। आप मैट्रिक पास थे और उस पार शहर से रोज जहाज पर गाँव आते थे। आपकी उपलब्धि इतनी ज़्यादा होने के बावजूद आप बहुत ज्यादा हकलाते थे अतः आप चुप ही रहना पसंद करते थे। बाकी दो जहाज घाट से सटे बस अड्डे के चालक और क्लिनर थे।

परमेश्वर और निखिल को देखकर अचानक छाई चुप्पी से वे दोनों प्रभावित हुए। वैसे परमेश्वर, गाँव के ठेकेदार का लड़का होने के नाते, औरों के ऐसे आचरण का अभ्यस्त हो चुका था। साथ ही एच० एल० परदेसी के रिश्तेदार होने के कारण उसकी उपस्थिति में परदेसी के खिलाफ कोई भी बात वहाँ वे छोकरे कर ही नहीं सकते थे। निखिल भी यह भाँप गया, वे परदेसी के खिलाफ बातें कर रहे थे। फिर भी उसके अंदर सोया अखबार नवीस चंचल हो उठा और उसने पूछ ही लिया।

"लगता है, आप लोग चुनाव के बारे में बातें कर रहे थे…।"

चुप्पी। हाथों में चाय के गिलास उठते रहे और फिर मेज से टकराते रहे। हल्की गुनगुनाहट भी उभर कर दब गयी।

"कौन जीत रहा है इस उप-चुनाव में?" निखिल ने दोबारा इस छोटी सी मंडली को संबोधित करते हुए पूछा।

"जी…यह कैसे कहा जा सकता है…" एक बोला।

"वाह! आठ दस दिनों के अंदर वोट पड़ने वाले हैं ," निखिल इस जवाब से ज़रा उत्साहित दीखा—" पोस्टर वगैरह चिपक ही चुके हैं। …अब हवा किस ओर है, यह तो बताया ही जा सकता है ·।"

"चुप्पी! फिर हल्की गुनगुनाहट। इस बीच राधेराम दो गिलास चाय थमाकर पूछ जाता है—"हाकिम लोग कचरी खायेंगे?"

"नहीं।" परमेश्वर चाय का गिलास थामते हुये कहता है। राधेराम चला जाता है।

"हाँ तो फिर ·," चाय की चुस्की लेकर निखिल इससे आगे कुछ कहने जा रहा था। कह नहीं पाया। चाय का कसैलापन और कड़वाहट से उसका मुंह विकृत हो आया। परमेश्वर के चेहरे पर एक हल्की सी मुस्कराहट उभर आयी। निखिल से चाय की अगली चुस्की नहीं ली गयी। फिर भी दिखावे के लिये वह गिलास हाथ में थामे रहा। परमेश्वर चाय पीता चला गया। राधेराम की चाय पीकर ही वह इतना बड़ा हुआ है।

"मायागंज में तो हवा एच. एल. परदेशी जी की ओर है…," जहाज घाट के टिकट बाबू कनखियों से परमेश्वर की ओर देखते हुये बोले—

"लेकिन संसदीय चुनाव क्षेत्र तो बहुत फैला हुआ है न! आस-पास के गाँव में—" हकलाते हुये टिकट बाबू कह गये।

"मैं सारे क्षेत्र का दौरा कर आया हूँ", निखिल तपाक से बोला—"एक में बटेसर साहब आगे हैं और एक गांव में हरिहर पांडे!"

"आप?" भीड़ में से एक ने आंतक भरे लहजे में पूछा—" क्या आप पुलिस के आदमी—"

"अरे नहीं भाई", परमेश्वर ने निखिल की ओर ऐसे ताका जैसे निखिल कोई बहुत ही लचर बात बोल गया हो। फिर कुछ क्षण रुककर बोला—"आप पुलिस के आदमी नहीं हैं।"

"तो अखबार के होंगे।" टिकट बाबू बोले—"इधर अखबार के आदमी आने-जाने लगे हैं।"

"हां अखबार के—"

"निखिल इससे आगे कुछ नहीं बोल पाया। दूकान के अँधेरे में परमेश्वर का पांव उसके पांव के ऊपर आ थमा। फिर उसका पांव कुचलता हुआ परमेश्वर बोला—"हां आप अखबार के आदमी हैं जरूर पर रिपोर्टर नहीं हैं, जैसा टिकट बाबू सोच रहे हैं। आप अखबारों का थोक व्यापार करते हैं।...रिपोर्टर तो निरपेक्ष होता है। भला मेरे साथ रिपोर्टर कैसे रह सकते हैं। आखिर मेरा रिश्तेदार जो चुनाव लड़ रहे हैं!"

"हां भाई, ठीक बोल रहे हैं परमेश्वर हाकिम,"—एक जो अखबार पढ़ऊ किसान था, बोला—"हम एकाध रिपोर्टर देखे हैं सहर जाकर। बदजात घोड़ा जैसे पुट्ठे पर हाथ रखने नहीं देता है, वैसे ही अखबार वाले कंधे पर हाथ तक रखने नहीं देते हैं। अखबार में लिखने वाला बड़ा भारी ईमानदार आदमी होता है न..."

"खीं · खीं ··खीं ··," निखिल अपनी हँसी रोक नहीं पाया। हिन्दुस्तान में अखबार का आदमी और ईमानदार! अरे उसे उसके अखबार के संपादक ने साफ-साफ कहा है, चुनाव संबंधी सारे रपट जनाब एच० एल० परदेशी के समर्थन में होने चाहिये।...गांव वालों को यह नहीं पता है, अखबार के लोगों को कितने भ्रष्ट लोगों से, कितने निहित स्वार्थों से जुड़े रहने पड़ते हैं।

"क्या हुआ ?" अंग्रेजी में परमेश्वर की बुदबुदाहट गूंजी—" अगर इन्हें यह पता चल जाये कि तुम अखबार के रिपोर्टर होकर, उम्मीदवार के रिश्तेदार के साथ घूम रहे हो तो गांव में यह बात बिजली की तरह फैल जायेगी और फिर विरोधी पक्ष वाले इसका भरपूर फायदा उठायेंगे। तब तुम्हारे 'डेसपैच' का कोई महत्व नहीं रहेगा..."

"समझा" निखिल ने धीरे से कहा—"भूल गया था। सॉरी !"

"अब जमेगा खेल भइया !" राधेराम अब तक कचरी तल चुका था। गिलास समेटते हुये बोला—"अबकी टक्कर राजपूत ब्राह्मण और यादव में है। पिछली बार ब्राह्मण बाज़ी मार ले गया था। अबकी देखना है, कौन बाज़ी मार ले जाता है !"

"आप लोगों' के लिये चुनाव महज़ जातियों के आधार पर लड़ाई है ?" निखिल ने हैरत भरी नज़रों से राधेराम को देखा—"पार्टी, चुनाव मैनिफेस्टो—"

"इतने सालों से तुम्हारा गाँव में घूमना बेकार," परमेश्वर ने करुणा भरी नज़रों से निखिल को देखा—"हिन्दुस्तान में कहाँ सिद्धांत के आधार पर चुनाव लड़ा जाता है, बता सकते हो मुझे ?"

"हैं काफी सारे जगह..." निखिल बोल गया—"केरल, बगाल—"

"साले तुझे नहीं, मुझे रिपोर्टर होना चाहिये था।" परमेश्वर इस बार अंग्रेज़ी में बोला—कुछ पॉकेट्स सिद्धांत के बल पर चुनाव लड़ते होंगे पर हमारे देश में अक्सर प्रगतिशील कहलाने वाली पार्टियाँ भी चुनाव में उम्मीदवार खड़ा करने से पहले उम्मीदवार की जात पर विचार करती हैं। जहाँ जिस जाति के वोटर ज़्यादा हैं, वहाँ उसी जाति के उम्मीदवार खड़े किये जाते हैं।"

"ठीक है, ठीक है।" मुस्कराकर निखिल ने बात टालनी चाही—"हाँ भई, मायागंज गांव में अखबार आता है क्या कोई ?"

"आप कहाँ से आये हैं हाकिम ?" ऊँकड़ू बैठा हुआ राधेराम पीछे मुड़कर बोला—"ऊ पार सहर से या फिर—"

"जहाँ से आये हैं, वहाँ का नाम तुमने सुना नहीं है राधेराम," परमेश्वर बोला—"अखबार मेरे घर पर आता है पर मेरे सिवा कोई

पढ़ता नहीं है।"

"हाकिम, अखबार के व्यापार में कितना नफा होता होगा?" उसी तरह बैठकर, चूल्हे से कढ़ाई उतारता हुआ राधेराम बोला—"यहाँ गाँव में एक अखबार ठेकेदार हाकिम पढ़ते हैं और दूसर गाँव की पाठशाला के हेड मास स्साब! वस्स ।"

"घाटा ही घाटा है भाई", वेंच से उठता हुआ निखिल बोला—"अब यह व्यापार बंद करना पड़ेगा!"

"हाकिम गाँव में घूमने आये हैं?" किसी एक ने पूछा—"अब सहर से लोग-वाग जब-तब इधर घूमने आने लगे हैं!"

"कुछ महीना पहले एक फिलिम कम्पनी यहाँ आया रहा!' 'टिकट बाबू बोले—"सो एक 'स्कैंडल' ही बन गया!"

"स्कैंडल?" निखिल पहली बार गाँव वाले से एक अंग्रेजी शब्द सुन रहा था। पूछा—"कैसा स्कैंडल साहब?"

"दिन-दहाड़े, कैमरा के सामने शूटिंग के नाम पर किसिंग-विसिंग फिल्म की हीरोईन का··"

"वाप रे!" निखिल उछला— "आप तो ग़जब की अंग्रेजी जानते हैं टिकट बाबू!"

"अंग्रेजी?" टिकट बाबू मुस्कराये—"जानता था पर अब भूल रहा हूँ। ···कभी कभी आप जैसे 'लरनेड पीपुलस' आ जाते हैं गाँव में तो 'पर्सोनल टू पर्सोनल' अंग्रेजी बोल लेता हूँ।"

"पर्सोनल टू पर्सोनल?" निखिल भागकर दूकान से बाहर आ गया। बड़ी मुश्किल से अपनी हंसी रोककर वह बोला—"सचमुच टिकट बाबू, आप गजब की अंग्रेजी जानते हैं!"

"आप भी सा'ब!" जहाज घाट के टिकट बाबू चारों और बैठे चेले-चमचों की ओर गर्व भरी मुस्कान बिखेरते हुये बोले—"यू आर आलसू ए फाईन पर्सोनल सा'ब!"

"थैंकू!"

वे दोनों दूकान से बाहर निकले। निकलते ही निखिल ने कहा—"मेरे ठहरने का इंतजाम जहाँ किया है तूने, मुझे सीधे वहीं ले चल।"

"मैं अपने घर पर तुझे रख नहीं सकता।" चलते-चलते परमेश्वर बोला—"वहाँ परदेशी सा'ब तुझे दिन भर, रात भर बोर करेंगे।"

"सो तो ठीक।"

"तभी तू मायागंज और हथियानाला गाँव के बॉर्डर पर बसे मिडिल स्कूल के हेडमास्टर राम मोहन बाबू के घर पर ठहरेगा। वहाँ मैंने सारा इंतज़ाम कर रखा है।"

"पर तू तो जानता है," निखिल बोला—"मुझे ज़रा एकांत—"

"अबे, एकांत ही एकांत है!" परमेश्वर हंसा, "तू क्या गाँव को शहर के छोटे-छोटे कबूतर खाना वाले मकानों का जमघट समझता है?"

"न···नहीं, पर—"

"अबे हवेली न सही पर खुली हवादार कमरे, अच्छा माहौल और मजेदार हेडमास्टर का संग—"

"मजेदार हेडमास्टर?" निखिल चौंका—"कहीं टिकट बाबू की तरह—"

"अबे नहीं?" परमेश्वर हंसा—"पर्सोनल टू पर्सोनल नहीं। ये ठीक-ठाक अंग्रेजी बोल लेते हैं। बाकी मिलने पर।"

० ० ०

हथियानाला की ओर मायागंज से कोई सड़क सीधी नहीं जाती थी। कच्ची या पक्की सड़क थी भी नहीं। खेतों के बीच से गुजरती पगडंडियाँ सड़क का काम करती थी।

एक स्कूल तो बन गया है गाँव में, पर वहां तक पहुंचने का कोई रास्ता नहीं है। बच्चे खेत-पथार लांघकर, पगडंडियों पर गिरते-पड़ते, रेंगते स्कूल पहुंचेगे। निखिल की समझ में नहीं आ रहा था, सड़क बनाये बगैर स्कूल का निर्माण क्यों किया गया। परमेश्वर के पास इसका कोई युक्ति संगत जवाब नहीं था। जो कुछ उसने कहा, उसका अर्थ था, गांव पंचायत चुनाव के पहले, वोट के लिये एक भूतपूर्व सरपंच ने इस स्कूल का निर्माण किया था। शुरूआत तीन चरवाहा बच्चों को घंटे भर बिठाकर की गयी थी। अब स्थिति सुधरी है। गांव में ट्रैक्टर के साथ-साथ शिक्षा के प्रसार का नारा भी बुलंद हुआ है। बच्चे बच्चियों की एक

अच्छी-खासी टोली राममोहन बाबू के स्कूल में देखी जा सकती है।

"ट्रैक्टर ?" चलते-चलते निखिल ने पूछ लिया—"यहाँ ट्रैक्टर भी आ गया है ?"

"जी हां ट्रैक्टर आ गया है ! परमेश्वर ने व्यंग्यात्मक लहजे में कहा—"मेरे पूज्य पिताजी के पास पांच ट्रैक्टर हैं। मायागंज, हथिया-नाला, मकसूदपुर, खंजरपुर और शिवसागरगंज—इन पांचों गावों में वे ट्रैक्टर किराये पर भेजते हैं।"

"किराया कितना है ?

"यह डीजल की उपलब्धि, सूखा, अकाल और टिकट बाबू के लहजे में 'पर्सोनल टू पर्सोनल' के रिश्ते पर निर्भर करता है।"

"मसलन ?

"मसलन आधी फसल से लेकर तीन चौथाई फसल अथवा पूरी की पूरी खेत तक गिरवी रखवायी जाती है।"

"तो तू साला पूंजीपति है !"

"मैं नहीं मेरा बाप !"

"एक ही बात है !"

"होगा !" परमेश्वर उदास हो जाता है। याद आता है, चाहकर भी, उस दिन वह गणेसी को बचा नहीं पाया। याद आता है, बड़ा भाई पैसे के बल पर बैतुल मांझी से घाट छीनकर; उसने उसकी लगभग हत्या ही की है। याद आता है, फुलबसिया काम छोड़कर भाग जाने के बाद भी ब्रिसेसर उसके पीछे हाथ धोकर पड़ा है।…"

"अब आज में रिपोर्ट क्या भेजूंगा !" खेतों के बीच संकरी पर पग-डंडी आगे-आगे चलते हुये, पीछे मुड़कर निखिल बोला—" दोपहर होने को आया, अब तक बसेरा का ठिकाना नहीं !"

"अब पहुंचते ही हैं !" परमेश्वर बोला—"यार, अब गाँव में रहने को मन नहीं करता !"

"क्यों ?"

"यही…जुल्म, अत्याचार देखकर !" परमेश्वर बोला—"लगता है हम अभी भी मध्ययुग में जी रहे हैं !"

"तो अपने पिताश्री के खिलाफ बग़ावत क्यों नहीं करते हैं आप ?" उसका मन भाँप कर निखिल ने मज़ाक किया—"आप तो कभी नक्स-लाइट तक बनाना चाह रहे थे ?"

"अरे छोड़ो यार", परमेश्वर हंसा। "वह सब बनना इतना आसान है क्या ? उस दिन लाख चाहकर भी अपने यहाँ के एक नौकर गणेसी को नहीं बचा पाया…"

"अच्छा है, आप यह सब समझते हैं", चलते-चलते निखिल ने फिर मजाक किया— "हमें तो लगा कि नक्सलबाड़ी के बाद, एक और जंगल संथाल मायागंज गाँव में पनप रहा है !"

"देखो ओ…," परमेश्वर गहरी साँस छोड़ता है।

"देखेंगे ए…," निखिल का ठहाका गूंजता है।

० ० ०

राम मोहन बाबू—यह नाम या इन अक्षरों से उच्चारित ध्वनिपुंज सुनकर कैसा चेहरा आंखों के सामने उभरता है ?…उम्र यही कोई पचास-पचपन ! चेहरे पर अधपकी मूंछे ! वदन पर कुर्त्ता और कंधे पर एक गमछा या चादर !

कम-से कम निखिल की आंखों के सामने तो यही खाका उभरा था उनका नाम सुनकर। पर जब उनसे मिलने का सौभाग्य हुआ, निखिल की समस्त कल्पना शक्ति रेत की दीवार की तरह ढह गयी।

राम मोहन बाबू हेडमास्टर होते हुये भी मुश्किल से पच्चीस साल के लगते थे। उनका पहनावा भी विचित्र था। एक हाफ पैंट और बनियाईन पहनकर, सर पर गमछे का मुरेठा बाँधकर, हाथ में घड़ी लिये वे बच्चों को 'माटी कहे कुम्हार को, तू क्या रौंदे मोहे…' का अर्थ समझा रहे थे।

परमेश्वर ने इन्हें संम्भवतः निखिल के विषय में पहले से ही सब कुछ बता दिया था। परिचय होते ही, हेडमास्टर साहब ने झुककर निखिल का लगभग चरण स्पर्श किया। हेडमास्टर सा'ब को, एक आगंतुक का चरण स्पर्श करते देख, क्लास से बच्चे निकल आये और उन लोगों के चारों ओर एक छोटी-मोटी भीड़ जम गयी। बच्चों की आंखों में अपार

कौतुहल था।

"धन्य भाग्य हमारे ̈," राम मोहन बाबू का सर अभी भी झुका था—"कि आप हमारे गांव आये···।"

···राम मोहन बाबू तीन-चार मिनट तक निखिल और परमेश्वर के सम्मान में पता नहीं क्या कुछ कहते रहे। यह सब सुनकर और राम मोहन बाबू का चेहरा देखकर, निखिल ने निर्णय ले लिया—'यह आदमी के एक नंबर का बोर और घोंचू होगा।'

लगातार तीन-चार मिनट तक अखबार वालों का प्रशस्ति गायन करने के बाद उन्हें होश आया, निखिल और परमेश्वर चुप है और लगभग पचास-साठ बच्चे तथा दो तीन अध्यापक उन्हें टुकुर-टुकुर देख रहे हैं।

"अई···हट्ट···" संभवतः उनका पौरुष जागा और उन्होंने छड़ी घुमाई।

"जाओ···छुट्टी···छुट्टी···"

बच्चे एकाएक जाने लगे तो वे दहाड़े—"ठहर बे ! ठहर !!"

बच्चे रुक गये। वे भीड़ चीरकर एक वृद्ध के पास आये और बोले "सदानंद बाबू, जरा छुट्टी की घंटी बजा दीजिये !"

"लेकिन घंटी तो गिरधारी बजाता है···," सदानंद बाबू शायद निखिल और परमेश्वर को देखकर चपरासी का काम करना नहीं चाह रहे थे। कुछ क्षण रुककर वे पुनः बोले—"गिरधारी किधर गया ?"

"किधर गया गिरधारी आपको नहीं पता ?" हेडमास्टर सा'ब गरजे—" एक बड़े अखबार के रिपोर्टर साहब के सामने आप मुझसे कहलवाना चाहते हैं कि गिरधारी इस स्कूल के सेक्रेटरी साहब के घर पर कुट्टी काटने (गाय भैंस का चारा काटने) का काम करने गया है ?"

"जी नहीं-जी नहीं···," सदानंद बाबू आतंकित दिखे—"ऐसा नहीं सरकार ?"

"तो फिर ?"

"लीजिये, अभी लीजिये—" वृद्ध सदानंद बाबू दौड़े और कुछ ही क्षणों में घंटी की आवाज गूँजी। न गूँजती तो शायद उनकी ही घंटी बज

जाती।

बच्चे भाग खड़े हुये।

सदानंद बाबू आये और झुककर राममोहन बाबू को सलाम कर चले गये। इसी तरह एक-एक कर दो और शिक्षक आये और झुककर राममोहन बाबू को सलाम कर चले गये।

"सर···गाँव का यह स्कूल—" राम मोहन बाबू संभवतः एक और छोटा मोटा व्याख्यान देने की तैयारी में लग गये थे।

"अब बाद में बातें होंगी।" परमेश्वर बोला—"निखिल के ठहरने-खाने का प्रबंध—"

"सो सब हो गया है सर।" राममोहन बाबू आगे बढ़ते हुये बोले—"चुनाव तक निखिल बाबू विशिष्ट अतिथि हैं। स्कूल के सेक्रेटरी, नरसिंह बाबू ने ज़िद थी। आप उन्हीं के घर पर ठहरें। सो··"

"ठीक है, ठीक है!" अब शायद निखिल का धीरज छूट रहा था—"जहाँ भी हो, तुरंत ले चलिये। भूख से जान जा रही है।

लंबे टीन के शेड से वे बाहर निकले। शेड के बीचे शहर के स्कूल की तरह बेंच-डेस्क नहीं था। छात्र फर्श पर ही बैठते हैं यहां।

पुनः खेतों के बीच से यात्रा। कही-कहीं कुएं से पानी उठाकर लोग बाग-खेतों में पानी पटा रहे थे। उन तीनों की टोली को देखकर लोग रास्ता या पगडंडी छोड़ देते थे। रास्ते में 'प्रणाम' या 'सलाम' की बौछार होती रही। लगता था, हेडमास्टर सा'ब काफी इज्जतदार आदमी समझे जाते थे। ··अब तक निखिल को पता लग चुका था, राम मोहन बाबू हिंदी में एम० ए० कर चुके थे और सेक्रेटरी सा'ब की पैरवी से तथा शहर के एक प्रख्यात विधायक की जबंदस्त सिफारिश से स्कूल बनने से पहले ही हेडमास्टर के पद पर नियुक्त कर दिये गये थे। इतना ही नहीं, राम मोहन बाबू अब तक अ-विवाहित थे और अब उन्हें दामाद बनाने के लिये शहर के विधायक महोदय और स्कूल के सेक्रेटरी में जबंदस्त होड़ लगी थी।

० ० ०

प्रौढ़ नरसिंह बाबू अपने खेत में ही मिल गये। पचास-पचपन की उम्र,

तहमद पहने, खाली बदन, हाथ में एक घड़ी लिये वे किसी पर बरस रहे थे। उनके सामने छः फीट लंबा, तगड़ा, काला-कलूटा गणेसी ऊँकड़ू बैठा था। नरसिंह बाबू की छड़ी, एक खास समय के अंतराल में उस पर बरस रही थी। गणेसी को जैसे उस बरसती घड़ी का कोई एहसास ही न हो। सर झुकाकर वह चुपचाप बैठा था।

निखिल परमेश्वर और राममोहन बाबू को देखकर सेक्रेटरी साहब थम गये। परमेश्वर को देखकर, उस हालत में भी गणेसी के चेहरे पर एक करुण मुस्कान बिखरकर मिट गयी। यह मुस्कराहट संभवतः पहचान की प्रतीक थी।

"यही गणेसी है," परमेश्वर ने निखिल से कहा—"हमारे यहाँ नौकरी छोड़कर, अब स्कूल के सेक्रेटरी, नरसिंह बाबू के यहां बंधुआ मजदूर बन गया है!"

"बंधुआ मजदूर?" निखिल साश्चर्य बोला—"लेकिन बंधुआ मजदूर प्रथा तो समाप्त कर दी गई है?"

"अखबारों में—सिर्फ अखबारों में!" परमेश्वर हँसा—"गणेसी और फुलबसिया जीवन भर नरसिंह बाबू के यहां काम करेंगे—कोई भी काम! बदले में उन्हें दो वक्त की रोटी मिलेगी और जब वे काम करने लायक नहीं रहेंगे तो उनके बच्चे उनका काम करेंगे···चलता रहेगा यह सिलसिला—पुश्त दर पुश्त···"

"लेकिन दिल्ली में नेताओं ने तो घोषणा की है कि यह प्रथा समाप्त कर दी गई है—हमेशा के लिए—" निखिल उत्तेजित लग रहा था।

"दिल्ली हिंदुस्तान नहीं है।" परमेश्वर हंसा—"दिल्ली में रहने वाले हिंदुस्तान को कितना जानते हैं दोस्त!·· असली हिंदुस्तान तो मायागंज, हथियानाला, मकसूदनपुर, खंजरपुर जैसे लाखों गांवों का समूह है!"

"सर, आज आप बड़े नाराज लगते हैं?" राममोहन बाबू दोनों हाथ जोड़कर सेक्रेटरी महोदय के पास आ खड़े हुए—"सर, आप क्यों तकलीफ करते हैं···लाइये, छड़ी मेरे हाथों में दीजिए। मैं इस गधे को पीटता हूं। आप तब तक हमारे अतिथि से परिचित हो लें!"

हवा में उठी नरसिंह बाबू की छड़ी हवा में ही रुक गई। उसी पोजीशन में वह छड़ी हस्तांतरित हुई। अब राममोहन बाबू गणेसी पर छड़ी बरसाने लगे — बगैर पूछे या पता किए कि उस पर छड़ी क्यों बर-साना है। दृश्य अद्‌भुत था।

"अरे छोडिये भी राममोहन बाबू !" निखिल भड़का—"आप तो गजब करते हैं ! पहले उस बेचारे का कसूर तो जानिये ?"

"कसूर ?" सेक्रेटरी नरसिंह बाबू दहाड़े—"साला कमीना—बैल मर गया एक, सो एक बैल के साथ मिलकर, जुआ कंधे पर रखकर, खेत जोतने का काम दिया था इसको। खेत तो बैल के साथ मिलकर जोतिस नहीं साला और ऊपर से खेत के मचान पर रखी मेरी सुराही से पानी चुराकर पीता पकड़ा गया।"

"रुकिये राममोहन बाबू !" निखिल शायद आवेश में आ गया था—"प्यासा था, पानी पी गया !"

"प्यासा था तो यह कहार दुसाध मेरी सुराही छूयेगा ? ब्राह्मण का पानी पीयेगा ? भ्रष्ट नहीं हो जाऊंगा मैं ??" नरसिंह बाबू दहाड़े। फिर पता नहीं क्या सोचकर कुछ क्षण रुके थे। फिर परमेश्वर की ओर मुखातिब होकर बोले—"कहीं आप ही तो हमारे रिपोर्टर अतिथि नहीं हैं ?"

"जी हां, आप वही हैं।"

"अरे राममोहन बाबू !" सेक्रेटरी महोदय हेड मास्टर पर बरसे—"करते क्या हैं आप ? छोड़िए भी !"

राममोहन बाबू का ऊपर उठा हाथ फिर रुक गया। वे खिसियानी हंसी हंसकर इधर आ गये।

"आप निखिल हैं !" परमेश्वर ने परिचय कराते हुए कहा—"और आप नरसिंह बाबू हैं। गांव के स्कूल के संस्थापक-सचिव !"

"बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर !" निखिल के स्वर की रुखायी देखकर नरसिंह बाबू इस विशिष्ट अतिथि को खुश करने के लिए खुशाम-दाना हंसी-हंसकर बोले—"सर, मुझे भी, मुझे भी। धन्यभाग्य हमारे ! ...आपको हमारे यहां कोई तकलीफ नहीं होगी..."

"जरूर-जरूर !" परमेश्वर बोला—"नरसिंह बाबू, निखिल को अपनी कोठी का सबसे हवादार कमरा दीजिएगा।...घबड़ाइये नहीं, निखिल एक श्रेष्ठ ब्राह्मण है।"

"अंय ?" नरसिंह बाबू जैसे चहक उठे—"तब तो आप हमारे खास मेहमान ठहरे हैं। एकदम खास—अंतरंग।"

"पर नरसिंह बाबू," निखिल हकलाया—"मैं ब्राह्मण नहीं—"

"... मानता," नरसिंह बाबू की नजरें बचाकर, एक आंख मारते हुए निखिल की बात काटकर परमेश्वर ने कहा—"अर्थात जाति-पांति नहीं मानता ।"

"हें...हें...हें...हें...," तहमद खोलकर समेटते हुए नरसिंह बाबू बोले—"एक श्रेष्ठ ब्राह्मण ही ऐसा बोल सकता है...खैर, चलिए, घर चलिए सर...।"

"चलिए !" हारकर निखिल ने कहा।

"सर, चुनाव-ऊनाव पर तो आप जो लिखेंगे सो लिखेंगे," चलते-चलते नरसिंह बाबू बोले—"पर आप यह जान लीजिए, असली लड़ाई ब्राह्मण और राजपूत में है—"

"देखा जायेगा...!" निखिल भयंकर बोरियत से उकता चुका था।

"सर, आप चुनाव की रपटं के साथ-साथ हमारे स्कूल के बारे में भी दो-चार पंक्ति लिख देंगे—"

"जरूर-जरूर...!" जमुहाई लेते हुए, हारे हुए सिपाही की तरह चलते हुए निखिल ने कहा—"पहले भूख से मुझे निपट लेने दीजिए, फिर ज़रा आराम से खर्राटे लूं। फिर शाम को आपसे विस्तार से बातें करूंगा।"

"ठीक हैं सर, ठीक है !" नरसिंह बाबू चलते-चलते राममोहन बाबू से बोले—"आप दौड़कर घर चलिए। कुएं से पानी खींचकर नहाने का इन्तजाम कीजिए। साथ ही अंदर रुमकी और उनकी मां से कहिये, खाने पीने में कोई कसर बाकी न रहे।"

"अरे, हेडमास्टर साब, आप नहाने के लिए पानी खींचेंगे ?" निखिल शर्माया—"नहीं-नहीं, रहने दीजिए। प्लीज...।"

"जाइए-जाइए…" नरसिंह बाबू का ब्राह्मणत्व जागा—"आप जाइए हेडमास्टर सा'ब। गणेसिया को बुला लीजिए तकलीफ होने पर।"

"दरअसल गांव में सेक्रेटरी साहब के सामने हेडमास्टर और गणेसिया में कोई बहुत ज्यादा फर्क नहीं है निखिल," परमेश्वर निखिल के कान में बुदबुदाया —"लगता है इतने दिन गांव की तुमने खाक ही छानी है… अब मायागंज आकर तुम्हारा जीवन सार्थक हुआ।"

"हुआ।" निखिल ने चैतन्य महाप्रभु की तरह अपने हाथ ऊपर कर लिए।

० • •

कभी-कभी निखिल इस तरह अनमना हो जाता है कि बात हद से आगे बढ़ जाती है। एक बार कहीं रिपोर्टिंग के लिए जाकर निखिल को किसी होटल में ठहरना पड़ा था। उस होटल में कॉरिडोर के एक किनारे बाथरूम की कतारें थीं। एक सुबह, नहाकर सिर्फ बनियान पहनकर, कोई गुत्थी सुलझाते हुए निखिल बाथरूम से बाहर आ गया था। उसी हालत में कॉरिडोर से गुजरते हुए अचानक होटल के मैनेजर से वह टकराया था। उसे देखकर मैनेजर की पलकें जड़ हो गयी थीं और मुंह खुला का खुला रह गया था। तभी विपरीत दिशा से आती हुई एक लड़की उसे देखकर ठिठक कर खड़ी हो गई थी। उस लड़की के आतंक ग्रस्त चेहरे को देखकर वृद्ध मैनेजर बेहोश हो गए थे। निखिल तब समझा था। लेकिन तब तक काफी देर हो चुकी थी। खुद को ढंकता हुआ दौड़कर वह फिर बाथरूम में घुसा जरूर था पर बात इतनी बिगड़ गयी थी कि अगर उसी वक्त वह होटल नहीं छोड़ता तो वह पिट जाता।

नरसिंह बाबू के यहाँ उस दिन वैसा कुछ नहीं हुआ पर अनमना रहने के कारण नरसिंह बाबू की कन्या के सामने थोड़ा पशोपेश में पड़ना पड़ा। बात यह थी, कि दोपहर को जमकर भोजन वगैरह करने से लेकर शाम तक के आराम करने का सारा इन्तजाम नरसिंह बाबू नहीं, उनकी पत्नी नहीं, उनके नौकर-चाकर भी नहीं; बल्कि उनकी एकमात्र युवा कन्या रुमकी, नरसिंह बाबू और उनकी पत्नी की देख-रेख में कर रही थी। गांव के लिए यह एक क्रांतिकारी कदम था। अगर यह बात नर-

सिंह वाबू की ड्योढ़ी से वाहर चली जाय तो इससे उनकी स्कूल की सेक्रेटरी-शिप तक जा सकती थी।

शाम को जब वह सोकर उठा तो चाय का प्याला रुमकी तख्त के ऊपर रख गयी। कमरे के बाहर शायद कोई नौकरानी खड़ी थी। प्याले की आवाज़ और चूड़ियों की रुनझुन ने भी जब निखिल का ध्यान रुमकी की ओर आकर्षित नहीं किया तो हंसी का एक फव्वारा तथा एक वाक्य —'सहरी घोंचू ··ही···ही · ही · ई···' उस कमरे में गूँजा। तब कहीं जाकर निखिल को होश आया। उसने सर उठाकर 'श' को 'स' कहने वाली रुमकी को पहली बार देखा तो देखता ही रह गया।

"ऐ अखवार वाले ··" कुछ क्षण रुककर रुमकी ने सीधे निखिल की आंखों में झांका—अगर मुझे ब्याह कर सहर ले जाने का चक्कर चलाया तो तुम्हारी हड्डी-पसली का चूरन···हि···हि···हि हि···"

बहुत ही अप्रत्याशित हमला था। मायागंज गांव में अखवार नबीसी करने आकर, एक के बाद एक, नये-नये अनुभव हो रहे थे। पर कोई आकर्षक किशोरी दिन-दहाड़े खामखा ब्याह और हड्डी-पसली का चूरन बनाने की बात करेगी, निखिल ने इसकी कल्पना तक नहीं की थी।

"जी? ··जी···बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर···" निखिल हकलाया।

"सुनो बाबू साहब!" रुमकी कमर पर हाथ धरे कमरे के बीचोंबीच खड़ी थी—"मैं राममोहन हेडमास्टर के अलावा किसी से सादी नहीं करूंगी···"

"कीजिए · जरूर कीजिए ··," निखिल चाय पीना भूल गया था—"मैं तो सपने में भी यह सब सोच नहीं सकता! कह क्या रही हैं आप?"

"इस घर में आज तक कभी चाय नहीं बनी, पता है तुम्हें?" रुमकी अब कमरे के दरवाज़े के पास चली गयी थी—"हम लोग गांव वाले चाय वगैरह नहीं पीते हैं। गांव में ठेकेदार साहब के यहां उनकी उस अंग्रेज़ छोकरिया—नुपुर के लिए सिर्फ चाय बनती है। बावा तुम्हारे लिए खास चाय बनवा रहे हैं। और मुझे तुम्हारी खातिरदारी के लिए तैनात किये हैं। काहे?"

"क · काहे?" निखिल बोला।

"ओय-होय ! कित्ता भोला है !" रुमकी बोली।

"रुमकी—रुमकी—ई" ई"" बरामदे से खड़ाऊं की आवाज़ के साथ नरसिंह बाबू गर्जे—"चल अन्दर। उन्हें परेशान मत कर !!"

रुमकी ओझल हो गयी।

"नीचे परमेश्वर बाबू आये है !" नरसिंह बाबू विनित से बोले—आप तैयार हो लें। चाहें तो उनके साथ घूमने निकल सकते हैं।"

"जी ? जी···। जरूर—जरूर···" निखिल अब तक जैसे 'ट्रांस' में था। उस अवस्था में तख्त से उठता हुआ बोला—"वह आपकी लड़की थी ?"

"हें···हें "हें···!" नरसिंह बाबू ने हाथ जोड़ दिये—"एकमात्र संतान—कन्या रत्न।"

"माफ करें···," निखिल से नहीं रहा गया—"उसका दिमाग कहीं—"

"राम-राम ! यह कह क्या रहे हैं आप ?" नरसिंह बाबू बोले—"बस जरा मुंहफट है !"

"ओह, माफ कीजिएगा," निखिल बोला—"मुझे लगा—"

"चलिए चलिए—" नीचे बैठक में ठेकेदार साहब के सुपुत्र आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

"चलिए—" कुर्ता पहनता हुआ निखिल निकला। निकलते ही सामने एक बार फिर रुमकी दिखी, निखिल को अंगूठा दिखाती हुई, मुंह चिढ़ाती हुई।

नरसिंह बाबू पीछे रह गये। शायद जान-बूझकर उन लोगों के साथ नहीं निकले। बाहर तक आकर कह गए—"रात-विरात ज्यादा दूर नहीं जाइएगा निखिल बाबू ! जल्द वापस आ जाइएगा।"

"ठीक है।" कनखियों से ऊपर उसके कमरे में खड़ी रुमकी को देखते हुए निखिल ने कहा—"लौट आऊंगा···।" फिर परमेश्वर की ओर देखता हुआ बुदबुदाया—"साले, मरवा डाला मुझे ?"

"क्यों क्या हुआ ?" परमेश्वर मुस्कुराया—"सेक्रेटरी साहब ने तो तेरे रहने का बड़ा शानदार इन्तजाम किया है।"

"सिर्फ रहने का ही नहीं," घिरते अंधेरे में खेत की संकरी पगडंडी पर संभलकर चलने की कोशिश करता हुआ निखिल बोला—"नरसिंह बाबू का यह विनम्र रूप देखकर कल्पना तक नहीं की जा सकती कि वे गणेसी को किस बेरहमी से पीट सकते हैं !"

"इतना ही नहीं," एक सिगरेट निखिल की ओर बढ़ाकर, दूसरा खुद सुलगाकर परमेश्वर ने कहा—"अपनी ड्योढ़ी के सबसे सुन्दर कमरे में उन्होंने तुम्हें ठहराया है। मिट्टी की ही सही, कमरा पहली मंजिल पर स्थित है। हवादार भी है और कमरे की खिड़की से दूर-दराज़ तक खेत-पथार, सलेटी आसमान और पेड़-पौधे देखे जा सकते हैं..."

"तुझे कैसे पता ?" निखिल धुआं हवा में उछालते हुए बोला—"लगता है, तू ठहरा है कहां !"

"वहां ब्राह्मण के अलावा कोई ठहर नहीं सकता !" परमेश्वर हंसा—"मैं सौभाग्य से या दुर्भाग्य से उस जाति का नहीं हूं—"

"साले, मैं हूं क्या ?" निखिल चिढ़ गया था—"कोई जान गया तो मेरी दुर्गति गणेसिया की तरह होगी—"

"चुप-बे-चुप !!" उस नीम अंधेरे में भी परमेश्वर ने इधर-उधर देखा—"इस राज़ को राज़ ही रहने देना—खबरदार ! होशियार !!"

निखिल चुप।

"हां, तो तुम यह जानना चाह रहे थे कि मैं कैसे उस हवादार कमरे के बारे में जानता हूं !" सिगरेट का एक गहरा कश लेकर परमेश्वर बोला—"जब यह ड्योढ़ी बन रही थी, उस वक्त सेक्रेटरी सा'ब, ठेकेदार सा'ब के पास आये थे—इजाजत लेने—"

"किस बात की ?"

"कि उन्हें गांव में एक छोटी सी माटी की कच्ची हवेली बनाने दी जाये !"

"क्यों ? हवेली बनायेंगे वे अपने पैसों से, अपनी जमीन पर !" निखिल चौंका—"इसमें ठेकेदार सा'ब की इजाजत की क्या जरूरत ?"

"इस गांव में पक्की इमारत एक ही है, और वह है ठेकेदार सा'ब की।" परमेश्वर हंसा—"उनके जीते जी कोई दूसरी पक्की हवेली बन

नहीं सकती ! अतः नरसिंह बाबू ने मिट्टी की दो मंजिली इमारत बनवाने को इजाजत मांगी थी।"

"यह तो सरासर जुर्म है !" निखिल परेशान दिखा—"क्या तुम्हारे पिताजी इस क्षेत्र के राजा हैं ?"

"राजा वही होता है इन दिनों, जिसके पास पैसा होता है। उनके पास पैसा है, जमीन है, जायदाद है और उन पर उनके समधी एच० एल० परदेसी की राजनैतिक कृपा है। इतना काफी नहीं है ?"

"लेकिन—"

"और इन चीजों को बरकरार रखने के लिए," निखिल की बातों में दखल देता हुआ परमेश्वर बोला—"जिस बाहुबल की जरूरत होती है, वह भी उनके पास है।"

"अतः नरसिंह बाबू की माटी की दो मंजिली इमारत बनी और—"

"और गृहप्रवेश के दिन हम विशिष्ट अतिथि बनकर, उसी कमरे में ठहरे, जहाँ अभी तुम ठहरे हो !" परमेश्वर हँसा।

निखिल से कोई प्रश्न नहीं बना। बातचीत रुक गयी कुछ क्षणों के लिए। वह परमेश्वर की हँसी में भी नहीं शरीक हो सका।

अचानक, अचानक ही घुप्प अँधेरा छा गया। दूर-दराज़ तक कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। दिगंत तक फैले खेतों का विस्तार था, उनमें खड़ी फ़सलें थी। झिंगुर की आवाज़ थी और बहुत दूर, जहाँ शायद कविता की भाषा में धरती और आकाश एक दूसरे को चूमते हैं—वहाँ कई भूतहा रोशनी जल और बुझ रही थी।

निखिल को अचानक याद आया, मध्यप्रदेश में एक बार अमरकंटक जाते वक्त रात को पेंड्रा रोड स्टेशन पर ठहरना पड़ा था। रात के बारह बजे अचानक स्टेशन की रोशनी बुझ गई थी। और तभी दूर पहाड़ों की चोटी पर एक साथ कई रोशनी जल और बुझ उठीं थीं। उस भीषण तमस में, उन रोशनियों का अचानक अपने आप जलना और बुझना शरीर में एक सिहरन पैदा करता था। निखिल की समझ में नहीं आता वह भौतिक क्रिया थी या मानवीय।

मायागंज गाँव में, अँधेरे में खेत के बीचों-बीच गुज़रते हुए दूर वैसी ही जलती-बुझती रोशनी को देखकर निखिल के बदन में वैसी ही सिहरन जागी। पता नहीं, यह उस रोशनी का असर था या निखिल की परेशानी का, उसने एक के बाद एक, कई प्रश्न परमेश्वर से किये, जो यूं हैं—

"वह रोशनी क्या है ?"

"भूतहा। रात को कभी उस ओर ताककर खेत में पेशाब नहीं करना। अगर किया तो गये समझो !"

"हूँ !"

"मज़ाक नहीं। मै सच कह रहा हूँ।"

"खैर मैं प्रसंग बदल रहा हूँ," उस भूतहा रोशनी से आँखें चुराते हुए निखिल ने कहा—"तुम्हें पता था रुमकी पागल है ?"

"पागल नहीं, निखिल, नी.म—-पागल।" फिर अपने को सुधारकर परमेश्वर बोला—"नीम पागल भी नहीं। बस थोड़ी-सी सरफिरी या सनकी है।"

"तो तुमने मुझे पहले से सावधान क्यों नहीं किया ?"

"अगर करता तो तुम्हें अनुभव कैसे होता ?" रुककर परमेश्वर ने कहा—"फिर इतनी सुंदर किशोरी की सेवा से भी तो तुम वंचित रहते ?"

"रुमकी राममोहन से प्रेम करती है ?"

"धत् ! यार, यह शहर-वहर नहीं है। प्रेम-रोमांस वगैरह पाश्चात्य कलचर है। गांव में वह सब नहीं होता। गांव में शादी होती है।"

"तुम्हें पता है, नरसिंह बाबू मुझे रुमकी के साथ—"

"पता है !" परमेश्वर ने निर्विचार रूप से कहा।

"स्साले, खड़ूस !" निखिल उत्तेजित होकर बोला—"अगर पता है तो मुझे वहां क्यों भिड़ाया ?"

"तो कहां भिड़ाता ?" यार तुझे दफ्तर से टूरिंग एलाऊंस कम मिलता है। तू शहर के होटल वगैरह में ठहरकर सुबह-शाम यहां आ-जा नहीं सकता। हमारे घर ठहर नहीं सकता। गांव में धर्मशाला तक

नहीं। ऐसे में नरसिंह बाबू और उनकी जरा सरफिरी रुमकी बुरी क्या है? कम से कम आठ-दस दिनों के लिये ?"

निखिल चुप रहा।

परमेश्वर ने निखिल के कंधे पर हाथ रखा—"ले अब किस्सा सुन···! राममोहन को रुमकी से विवाह में कोई आपत्ति नहीं। केवल वह दहेज ज्यादा मांगता है। नरसिंह बाबू तुझे ब्राह्मण संतान समझकर, सोच रहे हैं कम दहेज में काम चला लेंगे ?"

"लेकिन रुमकी तो राममोहन से प्रेम करती है !"

"फिर प्रेम-वेम !" परमेश्वर हंसा—"रुमकी को राममोहन रोज शाम पढ़ाने आता है। पढ़ाते-पढ़ाते दो-एक बार चुम्मा-चाटी···"

"यह चुम्मा-चाटी क्या है बे ?"

"चुंबन !! समझा ?" परमेश्वर फिर हंसा—"इतनी खूबसूरत लड़की को अगर तू भी पढ़ाता तो मौका मिलते ही चूम लेता।"

"चुप बे !" "निखिल बोला—"आगे बोल—"

"चुनाचे वह सरफिरी है और राममोहन हेडमास्टर की कृपा से दो-चार रोमांटिक पॉकेट बुक्स भी पढ़ चुकी हैं, इसीलिए इसको प्रेम कहती है। ·· पर सच मान, अगर खुदा-न-खास्ते उससे तेरी शादी हो जाय तो रुमकी पल भर में सब प्रेम-वेम भूलकर एक सुबोध गृहणी की तरह तेरा घर बसा लेगी। फिर दोहराता हूँ, गांव में प्रेम-वेम का कल्चर अभी आया नहीं है। यहाँ शादी होती है, जमकर दहेज ली-दी जाती है, बच्चे पैदा होते हैं, बच्चों का मुंडन समारोह होता है···"

निखिल ने आगे कुछ नहीं पूछा। झिंगुर और मेढ़क की आवाज को झेलता, झुक आयी फसल को दोनों हाथों से हटाता हुआ चलता रहा। फिर उसने अचानक पूछा—"हम कहाँ जा रहे हैं ?"

"मेरे घर।"

"क्यों ?"

"पिताजी तुझसे मिलना चाहते हैं।"

"सुन, तू अपने पिताजी से नफरत करता है परमेश्वर ?"

"पता नहीं।"

"यह नूपुर कौन है ?"

"एच० एल० परदेशी की कन्या। निहायत ही एग्रेसिव और ग्लैमरस। अंग्रेजी दां। मेरे बड़े भाई विशेश्वर की निगाह उस पर है।···हम वहीं जा रहे हैं ··बाकी पर्दे पर···।"

"धन्यवाद परमेश्वर।"

० ० ०

···भारत में मुग़ल सल्तनत की नींव अकबर ने मजबूत की··उनके समय में देश में अमन-चैन था।···उनकी निगाह में हिंदू और मुसलमान प्रजा में कोई फर्क नहीं था। उनकी एक पत्नी हिंदू थीं, जिनका नाम जोधाबाई था···।

निखिल का जी चाहा, यहीं कमरे में बैठ-बैठे वह चिल्लाये—पृथ्वीराज कपूर ने फिल्म मुग़ले आज़म ने अकबर की भूमिका में ग़जब की ड्रामाई एक्टिंग की थी···के० आसिफ० में करोड़ों की लाग़त से यह फिल्म बनायी थी · दिलीपकुमार ने, जो कभी बम्बई के 'शेरीफ' थे, सलीम की भूमिका निभाई थी ··और मधुबाला···

"छोड़िये मास्स सा'ब अब पढ़ने में मन नहीं लगता ··रुमकी चिहुंकी —"आइये गप्प करें !"

नीचे, बरामदे से सटे कमरे की खुली खिड़की से लालटेन की मध्यम रोशनी देखी जा सकती थी। रुमकी की खिलखिलाहट और हेडमास्टर राममोहन बाबू की आवाज़ भी साफ-साफ सुनी जा सकती थी।

बहुत चाहकर भी निखिल खुद को रोक नहीं सका। कमरे में पड़ी एकमात्र कुर्सी खींचकर, वह खिड़की के पास ले आया। ··हाँ अब तख्त पर बैठी रुमकी और राममोहन बाबू अच्छी तरह देखे और सुने जा सकते थे।

"गप्प ?" राममोहन बाबू का गला कांप उठा—"सेक्रेटरी साहब सुनेंगे तो मेरी गर्दन जायेगी। ··अगर पढ़ना नहीं है रुमकी, तो मैं जाऊँ ·"

धत् !" एक शर्मसार मुस्कान गूंजकर खिड़की की सलाखों से टकरायी और फिर पास उगे बाँस के जंगलों में खो गयी—"बाबा मुझ पर

नाराज़ हो सकते हैं भला ? फिर वे हैं ही कहां घर पर···चुनाव की मीटिंग में गये हैं !"

"तुम्हारी माँ ?"

"माँ इधर आती हैं भला ?" रुमकी फिर हंसी—"अपने होने वाले दामाद के पास सास आ सकती हैं भला ?"

रुमकी की ये अदायें देखकर कौन उसे नीम पागल कहेगा ! लग रहा था किसी गहन रोमांटिक पॉकेट बुक्स से संवाद उठाकर वह सीधे राममोहन बाबू के सामने रख रही थी।

'दामाद ?" राममोहन का स्वर रुआँसा हो आया—"अभी तो··· अभी तो ··"

"क्या अभी तो—अभी तो ?" रुमकी गर्जी "अभी क्या ? अब भी आप को समय चाहिये ?"

"समय नहीं···समय नहीं ," राम मोहन सकुचाये। शायद उठने की कोशिश भी की पर रुमकी की ओर देखकर आधा उठकर ही वे बैठ गये—"मुझे थोड़ा और दहेज ··"

उधर से कोई आवाज़ नहीं आयी। कुछ क्षणों के बाद बहुत हल्की सिसकी सुनायी दी।

"इस्स···स···," राममोहन बाबू शायद हड़बड़ाये—"ए रुमकी !"

"क्या है ?" किसी पॉकेट बुक्स में उस कथा की नायिका शायद ऐसे ही बोली थी।

"रुमकी मैं तो···मैं तो···"

"कहने में शर्म आती है ?"

"ऊँ हूँ···" युवा हेडमास्टर राममोहन ने पहले इधर-उधर देखा। फिर अपनी बाहें रुमकी के कंधे पर रखकर उसे अपनी ओर खींचकर पल भर उसे निहारते रहे; सम्भवत: उसी कथा के नायक की तरह। फिर रुमकी को सीने में भरकर बोले—"मैं तो तुझसे प्यार करता हूँ रुमकी—"

यह देखकर निखिल का कलेजा जोरों से धड़का। साला परमेश्वर कहता है, गांव में प्रेम-वेम नहीं होता है।

"मुझे नीम पागल से भी ?"

"उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है—" राम मोहन का चेहरा रुमकी के होठों पर झुक गया। सम्भवतः यह स्थिति दीर्घ समय तक बनी रही। अकबर बादशाह और उनकी धर्म निरपेच्छता की क्था लिये हुये इतिहास की पुस्तक तख्त पर लोटती रही।

"लेकिन···लेकिन···," उन्होंने सर उठाया—"तुम ज़रा सरफिरी या सनकी हो न, तभी मैं ज़रा ज्यादा दहेज—"

"आप दहेज-दहेज ही करते रह जायेंगे और मुझे आपकी आंखों के सामने वह सहरी अखबार वाला उठा ले जायेगा, जो ऊपर के कमरे में ठहरा हुआ है !"

हांय ??" राममोहन संम्भवतः 'आंय' कहना भूलकर, हकलाकर 'हांय' कह वैठे थे।

"जी हाँ !" रुमकी जैसे अचानक किसी पथभ्रष्ट नक्षत्र की तरह टूट गयी थी। राम मोहन के कंधे पर मुक्का चलाती हुई, अपना सर किसी मंत्रबिद्धा की तरह दाहिने-बांयें डोलाती हुई वोली—"हां··· हां···हां···"

क्षणिक खामोशी।

"और तब, दसहरा में दिखाये गये लैला-मजनूं नौटंकी की तरह मेरी डोली नहीं, मेरी अर्थी उठेगी", रुमकी सीधे राममोहन की आँखों में झांक रही थी अब—"समझे हेडमास्टर सा'ब ?"

"समझा।" राममोहन का स्वर रुआंसा था—"अगर ऐसा हो गया तो मेरी हेडमास्टरी तो गयी ही···।"

"एकदम गयी"···निखिल खिड़की की चौड़ी सलाखों से सर निकाल-कर चिल्लाया—"हेडमास्टरी वैसे भी गयी···मैंने सब कुछ देख और सुन लिया है···"

"हांय ?" नीचे राम मोहन अपनी खिड़की की सलाखों से मुँह निकालकर ऊपर निहारते हुये, इस बार भी 'आंय' कहना भूल गये थे। या हो सकता है, घबड़ाने पर वे हमेशा 'हांय' ही कहते हों !"

"ठहर रे मुहझौंसा !" रुमकी खिड़की पर हिली-डुली—"मैं झाड़ू

लाती हूँ।"

"वह चीज अगर आप ऊपर ले आयीं तो—" निखिल को अब मज़ाक मूर्खता में बदलता नज़र आया। फिर भी दम साधकर उसने कहा—"तो मै आज की सारी घटना नरसिंह बाबू को बताऊंगा और फिर अखबार में छपवाऊँगा भी···।"

काम हो गया। अखबार के धौंस पर जबर्दस्त असर होता नज़र आया। युद्ध विराम हो गया। दोनों पक्षों ने खिड़की की सलाखों से अपना-अपना सर अंदर कर लिया।

कुछ ही क्षणों में राममोहन बाबू ऊपर निखिल के कमरे में आये। दरवाज़े के बाहर खड़े होकर वहीं से धीरे-धीरे बोले—"मैं तैयार हूँ, उतनी ही दहेज़ में—"

"मैं आपकी शादी देखना चाहता हूँ," निखिल ने अकड़कर कहा—,'चुनाव से पहले शादी हो जाय तो अच्छा !"

"मुहुरत निकालना तो पंडित का काम है," राममोहन बाबू असहाय दीखे—"आप लोग मुहुरत निकलवा देंगे तो यह भी हो जायेगा ।"

"तथास्तु !" निखिल को जीवन में इससे बड़ी खुशी शायद पहले कभी नहीं हुई थी।

निखिल अपनी इस हरकत से दो मुश्किलात से साफ बच निकला। पहला—नकली ब्राह्मण बनकर पकड़े जाने के खतरे से। दूसरा—सरफिरी या सनकी किशोरी रुमकी के संभाव्य हमले से।

तीन

भोरौआ जहाज कुहासे की परतों को चीरकर घाट से भिड़े, इससे पहले ही एक नाटे कद का आदमी, जहाज से उछलकर, पानी पर खड़े घाट-प्लेटफॉर्म पर आ गया। ऊपर डॉक पर खड़े लोग हाय-हाय कर उठे। नीचे खड़े कुली-खलासी दौड़ पड़े उस ओर। छोटा-मोटा कुहराम मच गया। मुसाफिरों को लगा, वह आदमी पानी में गिर पड़ा है। पर नहीं। उछलकर प्लेटफॉर्म पर उतरते वक्त वह गिर जरूर पड़ा था पर यह गिरना अप्रत्याशित नहीं था उसके लिये। पल दो पल के अन्दर वह उठ खड़ा हुआ। धूल झाड़ता हुआ, धूसर-क्रूर आंखों से, नाटे कद के गठीले बदन वाले उस आदमी ने अपने परिवेश का मुआईना किया। फिर चीते की फुर्ती से वह कुली-खलासीसारंग और टिकट बाबू के दायरे को चीरकर उपस्थित भीड़-भाड़ में खो गया। अधिकतर लोगों ने दिलावर को नहीं पहचाना पर जिन ने भी उसे पहचाना उनके होश फाख्ता हो गये।

वह आदमी जानता है, उसे देखकर जो डर जाते हैं, उनसे उसे कोई खतरा नहीं। दिलावर कहलाने वाले उस आदमी का असली नाम दिलावर नहीं है। नाम बदलते-बदलते उसका असली नाम क्या है, यह उसे भी याद नहीं। लेकिन पुलिस के खाते में, अंतिम बार यही नाम दर्ज किया गया था। बहुत से नाम हैं उसके, मसलन झन्डूसिंह, पारसनाथ, गिरीश पांडे·· वगैरह, वगैरह।·· उस आदमी का रंग-ढंग और कारनामे देखकर लोग यह भी भूल गये हैं, वह दरअसल है क्या ! वैसे, ऐसे आदमी का कोई जात नहीं होता। वह न तो हिन्दु होता है, न मुसलमान, न सिक्ख, न इसाई।···बहुत अनुउल्लेखनीय, संभवतः अर्थहीन, होता है इनका जीवन। एक आतंक, जंगली-वहशी जानवर की तरह इनका पीछा करता रहता है। और इसी आतंक खौफ से दिलावर जैसे लोग, किसी संकटग्रस्त पंक्षी की तरह इस डाल से उस डाल, उस पेड़ से इस

पेड़ पर फुदकते रहते हैं।···ये संभवत: अपने लिये जीते भी नहीं हैं। ये इस्तेमाल किये जाते हैं। इनकी उपयोगिता एक खास समय तक या एक खास 'काम' तक ही है। उसके बाद ये उसी तरह फेंक दिये जाते हैं, जिस तरह गन्ने का रस चूसकर, उसके अवशिष्ट को सड़क पर फेंका जाता है।

···बहरहाल, उस आदमी के दिलावर संबोधन से जात-पांत ग्रस्त इस धरती पर गलत-फहमी की गुंजाइश हो सकती है। तभी उसे 'वह' कहकर संबोधित किया जा रहा है। मायागंज, हथियानाला से लेकर मकसूदपुर, शिवसागर गंज तक, असंख्य लोग उसे देखकर थर-थर कांपते हैं। बहरहाल, अभी वह भीड़ से बचना चाहता है। भीड़ या जाने-पहचाने चेहरे उसके लिये खतरा बन सकते हैं।

"का हो ?" अंगीठी पर चाय की बड़ी-सी केतली रखकर, उसकी टोंटी पर शाल का पत्ता खोंस रहा था राधेराम। उसे देखकर अकचका गया। फिर हाथ सर पर उठाकर, किसी फ्रिज शॉट की तरह हाथ वहीं रखकर मिमियाया—"सलाम हाकिम···स···सलाम···"

"खबरदार!" वह आदमी भूखे भेड़िये की तरह गुर्राया। फिर तीन चार नाम लेकर उसने कहा—"इन लोगों ने मुझे जहाज घाट पर देखा है। शायद पहचाना भी है। जाकर कह दो, जवान बंद रखें। नहीं तो जिंदा गाड़ दूँगा·· "

जवाब का इंतजार किये वगैर वह आगे बढ़ गया।

जहाज घाट का मिटता हुआ कोलाहल वह पीछे छोड़ चुका था। सामने ओस में नहायी, हरियाली का अनन्त विस्तार था। सर के ऊपर नीले नभ में शरत ऋतु के टुकड़े-टुकड़े बादल सूरज की रक्तिम किरणों से उलझ रहे थे। हवा से शिशिर की, मिट्टी की, और वनफूलों की महक, लिफाफे पर लगे किसी डाक टिकट की तरह चिपके थे। बहुत सुहाना दिन था। फिर भी उसकी धारदार चौकस आँखें दूर रेंगते आदमी के चेहरे से लेकर, खेतों की पगडंडियों पर मकड़ी के जाले से ऊलझी शबनम की बूंद तक को शक की निगाहों से देख रही थी। कुछ क्षण तक यह सब निहारने के बाद वह आश्वस्त हुआ। नहीं, कहीं शक की कोई गुंजाइश नहीं। उन लोगों ने उससे ठीक-ठाक ही वायदा किया था शायद।

जेल की सलाखों के उस पार ही उसे सब कुछ बता दिया गया था। पहले दिन जो सज्जन यह प्रस्ताव लेकर आये थे, उन्हें देखकर पहले वह चौंक गया था। फिर तुरन्त समझ गया था, हवा का रुख बदल गया है। राजनीति में ऐसा होता ही है। राजनैतिक गुंडों को भी बदलते हवा के साथ बदलते रहना चाहिये।

"तुम हमारा काम करोगे ?" जेल में मिलते वक्त हमेशा एक सिपाही खड़ा रहता है। वे सज्जन जब आये तो वह सिपाही तक खिसक गया था। सलाखों के अन्दर वह था। और सलाखों के बाहर गिरधारी परसाद थे—वही गिरधारी परसाद, जिनके भतीजे के कत्ल के आरोप में उसे चौदह साल की सजा मिली थी।

कत्ल उसने किया था या नहीं यह उसके लिये बड़ी बात नहीं है। कत्ल उसने कई किये थे। पर उसे यह बताया गया था, वह बचा लिया जायेगा। श्री एच एल. परदेसी की ओर से उनके खास दूत यह आश्वासन लेकर आये थे।···गिरधारी परसाद का भतीजा श्री परदेसी की कांसटिच्यूऐंसी में ही किसी उल्का की तरह राजनैतिक दिगंत पर दमक उठा था। एक के बाद, परदेसी जी के स्कैंडल अखबार में छप रहे थे। गिरधारी परसाद के उस छोकरे भतीजे में जबर्दस्त दम-खम था। जनवादी पार्टी में काम करने वाला कैडर वैसे ही बड़ा प्रभावी वक्ता होता है। पर उस छोकरे में इससे भी अधिक कुछ था। गाँव की सहज-सरल भाषा से लेकर शायराना अन्दाज में, हिंदी-उर्दू में जब उसके भाषण का पिच धीरे-धीरे ऊपर उठकर, एक वेग नाटकीय मुद्रा में नीचे आता था तो तालियों की गड़गड़ाहट से माहौल गूंज उठता था। आग लग जाती थी सुनने वालों के तन-बदन में। लोग मरने मिटने तक के लिये तैयार हो जाते थे।

···और एक दिन गिरधारी प्रसाद के भतीजे का कत्ल हो गया। यह घटना तब घटी, जब जनाब एच. एल. परदेसी, एम. पी. अपनी कांस्टिच्यूऐंसी में नहीं, राजधानी में भी नहीं, यहाँ तक भारत में भी नहीं थे। किसी डेलिगेशन में वे विदेश भ्रमण करने गये थे।

एक सभा समाप्त होने के बाद,. जब वह उभरता लीडर, शाम के झुटपुटे में सायकिल चलाकर घर वापस लौट रहा था, तब किसी ने पीछे

से उस पर गोली चलायी थी। किसने गोली चलायी थी यह आज तक साबित नहीं हो सका। पर गोली चलाने या चलवाने का यह काम उस पर ही-सौंपा गया था।·· वायदा था, वह बचा लिया जायेगा। लेकिन वायदा पूरा नहीं किया गया। न जाने कहाँ से अदालत में एक चश्मदीद गवाह उभरा और वह फँस गया। पता नहीं क्यों और किस वजह से उससे किनारा काट लिया गया। इस वारदात के पहले वह एक बार परदेसी जी से मिला था। उसे देखकर पलभर के लिये, केवल पलभर के लिये परदेसी साहब की भौंहें तन गयीं थीं। फिर चेहरे पर प्रशांत मुस्कराहट तैरी थी। वे बोले थे, ठीक वैसे ही, जैसा सभी से बोलते हैं—"मन लगाकर काम करो···सब ठीक हो जायेगा।"

बस इतना ही। इससे ज्यादा एक शब्द नहीं। फिर परदेसी जी अपने प्रशंसकों में खो गये थे। वह वापस आ गया था।

इस कत्ल के वाद क्यों उससे किनारा कर लिया गया? गिरधारी के भतीजे से उसे तो कोई व्यक्तिगत मनमुटाव नहीं था। बल्कि वह उस उभरते लीडर से प्रभावित ही था। जान लगाकर लोगों के सुख-दुख में वह लीडर शरीक होता था।···यह सब याद आते ही, कलेजे के अन्दर एक शोला भड़क उठता है। सुलगती रहती हैं साँसें हर पल!···चौदह साल, सलाखों के उस पार उसे क्यों सड़ने दिया गया? जिन लोगों ने यह काम करवाया, क्या उन्हें उसकी ईमानदारी पर शक था? क्या उन्हें पता चल गया था, वक्त बदलते ही वह अपनी जुवां खोलेगा? ···शायद हाँ।

चौदह साल में से दो साल ही पूरे हुये थे कि उस दिन गिरधारी दिखा। वगैर किसी लाग-लपेट के उसने दूसरा सवाल किया था—"काम समझ गये?"

"समझ गया!" उसकी आंखें जान उठी थी—"कहाँ है वह कमीना अभी?"

"सब पता चल जायेगा···" और गिरधारी चला गया था।

दो-तीन दिनों के अन्दर उसे दो-तीन कैदियों के साथ जेल के गेट पर झाड़ू लगाने को कहा गया। झाड़ू लगाते-लगाते दूसरे संगी साथी को वार्डर

इधर-उधर धकिया कर ले गये। मेन गेट के छोटे दरवाज़े पर एक प्रहरी बैठा था। उसे उसी वक्त जेल के बड़े हाकिम ने आवाज दी। बस रास्ता साफ था। वह इशारा समझा और दूसरे ही क्षण वह दरवाज़े के उस तरफ था।

बाहर निकलते ही किसी, दुःख या आवेग या वैसी ही कोई सूक्ष्म अनुभूति ने उसे विवश नहीं किया। दरअसल सूक्ष्म अनुभूतियां उसे विवश नहीं करती। कुध भोथरी अनुभूतियां—जैसी भूख और कामबोध ने उसे विह्वल किया। लेकिन इससे पहले कि वह अपनी शारीरिक जरूरतों की पूर्ति करे; उसे मुक्त करवाने वाले लोग मिल गये। उसके कैदी की वर्दी बदल डाली गयी। हाथ में कुछ पैसे दिये गये और कहा गया, उसका दुश्मन चुनाव लड़ने के लिये अभी मायागंज गांव में अपने समधी के यहाँ डेरा डाले हैं और उसे तत्काल वहाँ पहुंचना है।

उसे बताया गया, इस बात की जबंदस्त संभावना है, उसका दुश्मन इस बार भी चुनाव जीत जाये। अगर वह सचमुच चुनाव जीतने लगे, जिसके आसार हैं, तो चुनाव के केवल बारह घंटे पहले उसे खत्म करना है। इससे साँप भी मरेगा और लाठी भी नहीं टूटेगी। अर्थात् उसका जानी दुश्मन भी मारा जायेगा और उम्मीदवार के मरने से चुनाव फिलहाल रद्द कर दिया जायेगा।

"लेकिन तुम लोग किस पार्टी के हो ?" उसने पूछा—"तुम्हें इससे फायदा ?"

"हम जिस किसी पार्टी के हों," उन लोगों ने कहा था—"तुम्हारा दुश्मन हमारा भी दुश्मन है। उसने तुम्हारे साथ धोखा किया है। हमारे साथ भी···"

"लेकिन इस बात की क्या गारंटी है कि मेरे साथ तुम लोग भी वैसा—"

"इस लाइन में किसी बात की कोई गारंटी नहीं," अब गिरधारी बोला था, "मेरे भाई का कत्ल जिन लोगों ने करवाया था, उन लोगों ने गारंटी निभाई थी ?"

वह खामोश रहा।

"लेकिन हम तुम्हारे दुश्मन की तरह गद्दार नहीं," गिरधारी फिर बोला था—"जाओ, मौका अच्छा है। चुनाव-प्रचार जोरों पर है। सभी वगैर कोई खास गार्ड के खुले आम बाहर निकल रहे हैं..."

"कब काम करना है ?"

"अभी तक शत-प्रतिशत श्योर नहीं है कि वह चुनाव जीतेगा...," कोई और बोला—"पर जिस तरह वह पैसा बहा रहा है, वोट खरीद रहा है, और उसके लठैत, 'बूथ कैंपचर' करने की योजना बना चुके हैं; उससे हमें लगता है वह जीत जायेगा। तुम हमारा इंतजार करना। चुनाव के सिर्फ बारह घंटे पहले तुम्हें इशारा कर दिया जायेगा...।"

"ठीक है।"

हां, सब कुछ ठीक ही था। बाहर निकलने के दो घंटे के अन्दर ही वह सूंघ कर यह जान गया, अन्ततः फिलहाल पुलिस की ओर से कोई खतरा नहीं है। शहर में एकाध जगह, सफेद पोशाक वाली पुलिस उसे देखकर भी न देखने का बहाना बना रही थी। वह आश्वस्त हुआ। उसे विश्वास हो गया, जिन लोगों ने उसे छुड़ाया है, उनकी पहुंच बहुत दूर तक है। अब भूख मिटानी है। पेट की और जिस्म की भी। जिस्म की दो साल की भूख शरीर में सोयी हैं। जेल से बाहर निकलने के बाद पेट से ज्यादा जिस्म की भूख सता रही है और जहाज पकड़ने से पहले उस भूख का मिटना जरूरी है।

किसके पास जाया जाय ? कमली के पास ? श्यामा के पास ? या डॉली के पास ? ...राह चलते हुये, एक पल के लिये उसकी आँखों के सामने कुछ औरतों की तस्वीरें उभरती हैं। उनमें से एक को चुनता है वह। वह कमली ही होती है। कमली के पास जाने से पता चल जायेगा, पिछले दो वर्षों में कौन किधर गया है, कौन क्या कर रहा है वैसे और लोग भी उसके पास आते-जाते हैं। लेकिन कमली उसका खास ख्याल रखती थी। कदम खुद-ब-खुद उसके घर की ओर मुड़ जाते हैं।

जेल जाने से पहले तक एक कठपुतली की तरह कमली उसके हाथ में नाचती थी। प्यार ? अरे हट ! यह सब बेकार की चीजें हैं। औरतें हमबिस्तर बनाने के लिये होती हैं। इससे ज्यादा औरतों के बारे में उसने

कभी सोचा नहीं था। सोचने की जरूरत ही नहीं हुयी।

·· शाम झुक आयी थी। एक गंदी बस्ती में कई गंदी नालियां लाँघकर, खपड़ैल मकानों की एक कतार के सबसे आखरी मकान के दरवाजे पर आकर वह खड़ा हो गया। पहले पचासों बार वह इस मकान के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ है। कभी कोई खटका नहीं लगा था। पर अभी रात की धुलती स्याही में कमली के दरवाजे के चौखट पर रंगोली देखकर वह चौंका। ईश्वर ने उसे बहुत ज्यादा बुद्धि दी हो, यह बात नहीं। पर अपनी लाइन की बातें, मसलन—खतरा, पुलिस का हमला, दुश्मन की चालें, लड़कियों की हरकतें, आदि भाँपने की एक अद्भुत क्षमता ईश्वर ने उसे दी है। जंगली जानवरों में खतरा को भाँपने की एक अद्भुत क्षमता रहती है। उसमें भी यह क्षमता थी।

चौखट पर रंगोली देखकर, उसे लगा, उसके 'अन्दर' जाने के बाद कहीं कमली किसी को पकड़कर 'बैठ' तो नहीं गयी? आहट ली उसने दरवाजे पर। अन्दर से कमली की खिलखिलाहट और किसी आदमी की दबी हँसी सुनायी दी।·· अगर वह अभी अन्दर जाये तो अन्दर बैठा वह आदमी क्या उसके लिये खतरे का कारण बन सकता है? यह उस आदमी को देखे बगैर नहीं बताया जा सकता।

दरवाजे पर दस्तक दी उसने।

"कौन?" एक मर्द बोला—"कौन है भाई?"

उसने कुछ नहीं कहा। दस्तक दोबारा पड़ी।

"अरे कौन है भाई?" दरवाजे के उस पार से आ रही उस मर्द की आवाज़ में एक शराफत, एक कशिश थी। अपने अनुभव के आधार पर, यह आवाज़ सुनकर ही वह बता सकता था, कमली के साथ इस क्षण जो आदमी अन्दर है, वह निहायत ही शरीफ डरपोक, और झंझट न चाहने वाला आदमी है।

"मैं हूं।" उसने आवाज़ दी—"खोल कमली।"

एक हल्की सी चीख, कमली की। फिर लंबी चुप्पी।

"खोलती है स्साली या—" वह चीखा।

दरवाजा तुरन्त खुला। उसके सामने एक आदमी—प्रौढ़ नहीं, पर

युवक भी नहीं, खड़ा था। खानेदार तहमद बाँध रखी थी उसने। वदन नंगा था। पीछे चारपायी पर कमली लेटी थी। लालटेन की मध्यम रोशनी में वह कमरा साफ-शफ्फाक और एक पाक घर की तरह लग रहा था।

"क्यों री कमली ?" अन्दर आकर दरवाजे पर सिटकिनी चढ़ाते हुये वह बोला—"मेरे ओझल होते हुये ही घर बसा लिया ?"

कमली, जो कभी उसे देखते ही उसके सीने में समा जाती थी; अभी अपने सामने जैसे किसी प्रेत को देख रही थी। चेहरे का रंग बदल कर कागज़ की तरह सफेद-स्याह हो गया। बिस्तर से उठती हुयी बोली—"तुम ? तु···तुम तो चौदह सालों के लिये—"

"जेल से भाग आया हूं।" एकटक कमली को देखता हुआ बोला—"यह खड़ूस कौन है ?"

"मेरा—मेरा पति" चारपायी से उठकर कपड़े संभालती हुयी, कातर स्वर में कमली बोली—"भगवान के लिये धीरे बोलो। तुम ··तुम भागे हुये कैदी हो···कोई सुनेगा तो—"

उसका दिल चाहा एक लात मार कर यह घर उड़ा दे। तोड़ दे यह चारपायी, खाना पकाने का सामान, टीन कनस्तर, स्टोव ! पर नहीं। यह गुस्सा क्यों ? उसने तो कभी कमली से बंधना नहीं चाहा। अब अगर कमली बंध गयी है किसी से तो इसमें हर्ज क्या है !···उसे तो कमली से कुछ और चाहिये।

"खाना खाऊंगा मैं ?" वह चारपायी पर बैठता है। फिर पहली बार कमली के जिस्म को निहारता है।

शादी, घर, पति वगैरह क्या जीवन को निश्चितता देते हैं ? कमली का शरीर संभवतः इसी बात का साक्षी है। सूखी नदी में जिस तरह ज्वार आता है, कमली का जिस्म वैसे ही भरा-पूरा-उछला-छितराया सा है। देखकर दिमाग खराब हो जाता है।

कमली निःशब्द और गजब की फुर्ती से खाना परोसती है। रोटी, दाल और अचार।

"अबे खड़ूस !" पति कहलाने वाले उस निरीह से प्राणी को वह कहता है—"घर तो बसाया है पर जानते हो, तुम्हारी औरत मेरी

रखैल थी ?"

"सुना था···।" वह बड़ी देर के बाद बोला।

"फिर ?"

"आपके जेल जाने के बाद कमली अकेली पड़ गयी थी···", उसकी फुसफुसाहट सुनायी दी—"मैंने तो कोई गलती नहीं की—"

"नहीं कोई गलती नहीं की तुमने।" खाना निगल चुकने के बाद वह बोला—"पर अब कर रहे हो। मैं कमली के साथ अब लेटूंगा—इस चारपायी पर ! तुम देखोगे खड़े-खड़े या—"

"नहीं, कभी नहीं !" कमली एकाएक चिल्ला उठी—"अब यह कभी नहीं होने का !"

"चोऽप हरामज़ादी !" आहत शेर की तरह वह गर्जा—"साली रंडी ! पतिव्रता बनती है ?"

"आपको···आपको इस बस्ती में और काफी मिल जायेगे···", वह आदमी अब अपना दुखड़ा रोने लगा था—"मैं एक गरीब बीड़ी बनाने वाला हूँ। बहुत सोच-समझ कर यह घर बसाया था—सब कुछ जानकर भी—।"

"साले तुम यहाँ हमारा खेल देखोगे या जाओगे ?"

वह फिर गर्जा। उसका धीरज टूट रहा था।

"नहीं, तुम कहीं नहीं जाओगे - कहीं नहीं—" कमली कुछ और बोलने जा रही थी। बोल नहीं सकी। एक भरपूर तमाचा उसके गाल पर आ गिरा। दबी सिसकी से कमरा गूंज उठा।

कमली का पति अभी भी खड़ा था। असहाय, विपन्न, बध्यभूमि पर ले जाते हुये बकरे की तरह। धीरे-धीरे, उसकी असहाय आँखों में आँसू भर आये। रोता हुआ ही वह बोला—"खुदा कसम, मैंने वायदा किया है, एक अच्छे शौहर की तरह उसकी हिफाजत करूंगा···मैं··मैं कैसे जा सकता हूँ—जीते जी—"

"ओ !" उसकी आँखों में खून के डोरे उभर आये थे। तेज कदमों से वह कमरे के एक ओर गया। और फिर पलक झपकते ही, रोटी बनाने का बेलना लेकर, उसने पहले कमली का मुंह दबाया और उसी फुर्ती

से उसके पति के सर पर दो मध्यम वार किये। वह लुढ़क पड़ा। कमली चाह कर भी चीख न सकी।

"चिल्लायेगी तो जान से मार डालूंगा कमली—" "वह गर्जा—अभी तेरा शौहर सिर्फ बेहोश हुआ है—तीन चार घंटों के लिये। बस। वार बहुत हल्का है। पर अगर तूने और झंझट किया तो—"

कमली की साँसें फूल रही थीं। उसने हाथ हटाया। फिर उसकी आँखों में झाँका—पहले जिस तरह झाँका करता था। नहीं। कमली की पलकों की एक सूत भी नहीं काँपी। वहाँ पहचान की काई प्रतीति नहीं। ···कितना जल्दी सब कुछ बदल जाता है! क्या हो जाता है इन औरतों को? एक मामूली सा बीड़ी बनाने वाले शौहर कहलाने वाले इस कमजोर, डरपोक-शरीफ आदमी ने क्या जादू कर दिया है कमली पर?

ज्वार जिस तरह तीर से टकराता है, उसी तरह टूट पड़ता है वह कमली के गुदाज जिस्म पर। चिथड़े-चिथड़े कर डालता हूँ कपड़े। प्याज के छिलके जिस तरह उतारे जाते हैं उसी तरह उसे आवरण मुक्त करता है। एक बार और कमली खुद को छुड़ाने का प्रयास करती है।

"गर्दन दबा दूंगा!" उस भीषण, भयंकर, कामातुर जानवर की नाभि से ये शब्द निकलते हैं और उसके हाथ कमली के गर्दन के इर्द-गिर्द कसने लगते हैं।

तब कमली खुद को ढीला छोड़ देती है।·· पागल हो उठता है वह आदमी उस उफनते हुये मांसल विवस्त्र औरत को देखकर। दो साल सलाखों के उस पार वह इस स्वाद से वंचित था। वह वंचना उसे आदमी नहीं रहने देता। भूखे भेड़िये की तरह वह उस जवान जिस्म पर दांत गड़ाता चलता है। चीख उठती है कमली। वह जितना चीखती है, वह आदमी उतना ही भयावह, उतना ही उन्माद हो उठता है।

"मुझे मत मारो···मुझे मत मारो···", रो पड़ती है कमली—"मैं मर जाऊँगी···।"

मगर किसे किसके मरने की फिक्र। अन्त में होश और बेहोशी की सीमा रेखा में झूले की तरह झूलती हुयी कमली सुन्न सी पड़ी रहती है। उस निर्जिव से लेटे बुत से ही वह खेलता रहता है—तब तक, जब

तक पास की मसजिद से अजान की आवाज़ सुनायी नहीं देती।

उठता है तब वह। चेहरा धोता है। कपड़े पहनकर जानवर से आदमी बनता है। कमली को कपड़े पहनाता है। एक बार नीम बेहोशी में लेटे उसके शौहर के चेहरे पर पानी छींटता है। फिर सिटकनी खोलकर कमरे से बाहर आता है।

उस वक्त भोर का तारा खूब जगमगा रहा था। और उफक पर हल्की सी लाली छा रही थी। वह रुककर भोर का तारा देखता है, फिर मस्जिद का अजान सुनता है। हल्के से मुस्कुराता है और आगे बढ़ जाता है।

सीधे मायागंज की ओर जहाँ जनाब एच. एल. परदेशी का डेरा है।

० ० ०

आपात्-स्थिति में देश में दहेज प्रथा के खिलाफ आवाज़ उठायी थी। दिल्ली में काफी हो-हल्ला हुआ था। बड़ी-बड़ी सभाओं में युवकों ने शपथ लिया था, वे दहेज नहीं लेंगे। युवतियों ने कसमें खायीं थीं, वे सदहेज विवाह नहीं करेंगी।…उन कसमों का क्या हुआ पता नहीं पर आज देश की राजधानी, दिल्ली में ही संभवतः सबसे अधिक दहेज-मृत्यु के समाचार मिलते हैं। जिस तरह देश की राजधानी में आज भी दहेज ली और दी जाती है, उसी तरह देश के इस अख्यात गांव, मायागंज में भी निःसंकोच दहेज ली और दी जाती है—खुले आम।

यद्यपि पंडित के लिये मुहुरत निकालना जरा मुश्किल हो रहा था, फिर भी थोड़ा अर्थ व्यय से नरसिंह बाबू ने मुहुरत निकलवा लिया। अब गांव में भी नोट दिखाने पर पंडित समय-असमय मुहुरत निकाल देते हैं और भाभी वर-वधू की जन्मपत्री भी मिला लेते हैं।

हांलाकि इन दिनों गांव में राममोहन बाबू जैसे प्रतिष्ठित लड़के के लिये पचास हजार तक दहेज मामूली बात है फिर भी स्कूल के सेक्रेटरी, अपनी नौकरी, भविष्य में पदोन्नति तथा रुमकी के साथ 'प्रणय' को ध्यान में रखकर बात तीस हजार पर तय हो गयी। नरसिंह बाबू बीस हजार से आगे नहीं बढ़ना चाहते थे पर यह उन्हें भी पता था, तीस हजार नक़द देकर वे बहुत सस्ते छूट रहे हैं। गांव में इस 'सस्ते' सौदे को लेकर

तरह-तरह की अटकलवाजियां हुयीं। रुमकी और राममोहन बाबू के 'अवैध' संबंधों को लेकर भी चोरी-छुपे बात चली। पर अमीरों को जो सुविधा आज शहर में प्राप्त है, गांव के अमीरों को वही सुविधा आज गांव में प्राप्त हैं। रुमकी और राममोहन बाबू के 'अवैध' संबंधों को लेकर बात जिस तरह उठी थी, उसी तरह वैसे ही दब भी गयी।

नियत समय पर राममोहन बाबू दुल्हा बनकर, डेढ़ सौ बारातियों से घिरकर विवाह मंडप में आये। उस ठाठ के क्या कहने ? ठेकेदार साहब की कृपा से, जेनरेटर की मदद से दूर-दूर तक बिजली की रोशनी से जगमगा रहा था। विवाह-मंडप के एक ओर दहेज की सामग्री सजी थी। जेवरात, घड़ी, सायकिल, पलंग, मेज टेबुल, कुर्सी, आलमारी वगैरह-वगैरह। उन चीजों के ऊपर बड़े-बड़े हरफों में लिखा था, दहेज-सामग्री।

बारातियों की खूब खातिर की गयी। गाँव में विवाह के मौके पर पहली बार बारातियों को अतर, बर्फ और चीनी की शरबत पिलायी गयी। राममोहन बाबू और उनके पिता, भाई वगैरह को एकदम अलग स्थान पर बिठाया गया। उन्हें बर्फ की ठंडी शरबत न पिलाकर शहर से मंगायी गयी 'गोल्ड-स्पॉट' पिलायी गयी। बारातियों में इस बात को लेकर काफी हो-हल्ला भी हुआ। अन्त में दूल्हे महाराज इस बात को लेकर रुस गये (नाराज हो गये)। उनकी खफगी दूर करने के लिये उनसे शर्तें पूछी गयीं। बैठे-बैठे राममोहन बाबू ने एक बार दहेज की सामग्री पर उचटती निगाह फेरी। और फिर नाक-भौंह सिकोड़ कर एक स्कूटर माँग बैठे। पर आश्चर्य, नरसिंह बाबू स्कूटर की बात पर जरा भी चिंतित नहीं हुये और उन्होंने उस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। पता चला, नरसिंह बाबू को यह ज्ञात था, दूल्हा दहेज की सामग्री से कभी खुश नहीं होता। वह नाराज होने का नाटक रचकर कुछ न कुछ माँगता ही है। यह एक किस्म की रस्म है और भावी ससुर को यह रस्म पूरी करनी पड़ती है।

यह सब लेन-देन तीन प्रमुख संसदीय उम्मीदवार सर्वश्री एन. एल, परदेसी, हरिहर पांडे और बटेसर यादव के नाक के सामने हो रहा था। चंद दिनों के बाद इनमें से एक संसद जाकर 'मानवीय अधिकारों' और

'देश की प्रगति' के लिये जोरदार लड़ाई लड़ने वाले थे पर अभी ये तीनों इस सौदेबाजी को इनज्वॉय कर रहे थे। और लोगों के साथ निखिल भी आमंत्रित था। वह विशिष्ट अतिथि के रूप में गिना जा रहा था। जब से नरसिंह बाबू ने हरिहर पांडे को बताया था कि निखिल ब्राह्मण है वे खिल उठे थे। उन्हें विश्वास था, निखिल अपनी रपट में उन्हें 'बैक' करेगा ही। इस उप-चुनाव के संबंध में कुछ समाचार विभिन्न अखबारों में निकले भी थे पर उन समाचारों से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता था। पर अब ज्यों-ज्यों चुनाव का समय निकट आता जा रहा था, सबके सब, अखबारों में अपनी-अपनी खबरें छपवाने के लिये परेशान हो उठे थे; यह जानते हुये भी कि पूरी कांस्टीच्यूएंसी में अखबार पढ़ने वाले मुश्किल से पांच सौ भी नहीं होंगे। पर एक बात है। अखबार में छपी समाचार को गांव वाले 'अमृतवाणी' समझते हैं। उनकी निगाह में यह अंतिम सत्य है। लोग-बाग अखाबर पढ़े या न पढ़ें; अगर यह सुन लें कि फलाना व्यक्ति के जीतने की संभावना अमुक अखबार में व्यक्त की गयी है तो वे यह मान लेंगे कि वह व्यक्ति जीत ही रहा है और उसे वोट देंगे ही। अतः प्रचार की दृष्टि से अखबार आज भी गांव में एक सशक्त माध्यम है। उन्हें यह नहीं पता अखबार देश की भ्रष्ट व्यवस्था का संभवतः सबसे भ्रष्ट अंग है।

इस विवाह मंडप में निखिल ही एकमात्र अखबार वाला नहीं था, इसीलिए खैर थी। दूसरे अखबारों से और कई अखबार वाले आये थे। वे इस संसदीय क्षेत्र में मायागंज से मकसूदपुर तक फैले थे। इस समारोह में इस बात का ध्यान रखा गया था कि सारे के सारे अखबार वाले आमंत्रित हों और उनका विशेष ख्याल रखा जाय। विवाह मंडप में उपस्थित अन्य रिपोर्टरों के साथ-साथ निखिल भी उम्मीदवार तथा उम्मीदवार समर्थकों और कार्यकर्ताओं से घिर गया था। मौका मिलते ही निखिल वहां से खिसका। हालाँकि निखिल को एच०एल०परदेसी जी ने खिसकते देख लिया था पर उनके मुख पर एक प्यारी सी मुस्कराहट फैली थी, जिसका अर्थ था—'बच्चू, तुम कितना भी खिसको, एच०एल०परदेशी को 'बैक' करना तुम्हारी नियति है। अन्यथा तुम्हारी

नौकरी खतरे में है। मैं तुम्हारे सेठ का मददगार हूं और तुम तुम्हारे सेठ के दलाल हो। मुझे अच्छी तरह पता है, सेठों की मुट्ठी में कैद हिंदुस्तान के अधिकतर अखबारों के अधिकतर रिपोर्टर नौकरी नहीं, सेठों की दलाली करते हैं···।'

बहरहाल परदेसी की उस खूबसूरत मुस्कराहट को 'डि-कोड' करता हुआ निखिल जब खिसका, तो देखा, तमाम आव-भगत के बावजूद संसदीय उम्मीदवार श्री बटेसर यादव विवाह मंडप के एक किनारे अपने चेले-चमचों से घिरे उत्तेजित से खड़े हैं। पता चला, वे अभी-अभी मंडप त्याग देंगे और इनके साथ इस समारोह में शामिल, बराती और जनवासा से सम्बद्ध काफी लोग इस समारोह का बहिष्कार करेंगे। कारण ?

कारण यह है कि यादव जी बैकवर्ड ग्रूप अर्थात पिछड़ी जाति के हैं और 'फारवर्ड ग्रूप' अर्थात 'उन्नत जाति' के लोग पिछड़ी जाति के लोगों को निमंत्रित कर भी उचित अतिथि सतकार नहीं कर रहे हैं।

चुनाव के ऐन मौके पर इस तरह की बात से 'फारवर्ड ग्रुप' और उसके उम्मीदवारों को क्षति पहुँच सकती है। निखिल ने पास खड़े परदेसी जी और हरिहर पाँडे जी से इसका जिक्र किया। वे ठहका लगाकर हँसे। दो चार और फारवर्ड समूह के लोगों से उसने बात की। उन लोगों ने भी कोई खास दिलचस्पी नहीं ली।

"अथिति सत्कार कैसा ?" निखिल के बहुत कहने पर हरिहर पाँडे बोले—"जिसकी जैसी हैसियत है उसकी खातिर उतनी ही की जायेगी।"

"हैसियत ?" निखिल बोला—"वे आमंत्रित हैं। नरसिंह बाबू को चाहिए, उन लोगों के साथ भी वैसा ही सलूक करें, जैसा आपके साथ कर रहे हैं।"

"बचवा !" वृद्ध हरिहर पांडे बोले—"आज से दस पंद्रह बरस पहले ऊ लोग हम लोगन का ढ्योड़ी तक नहीं आता था। ठीक वैसा ही सलूक उन लोगों के साथ भी किया जाता था जैसा आज हम हरिजन के साथ करते हैं !"

"लेकिन पाँडे जी", निखिल अब जरा नाराज़ दीखा—"छूआ-छूत एक अपराध है। असंवैधानिक है।···आप, आप एक सांसद बनने जा

रहे हैं—"

"छूआ-छूत अपराध और असंवैधानिक दिल्ली में होगा", पाँडे जी बोले—"यहाँ गांव में नहीं हैं। और हम चुनाव इन लोगन के बल पर नहीं लड़ने जा रहे हैं। अपनी जाति के बल पर लड़ रहे हैं।" "लेकिन पांडे जी", निखिल के ईर्द-गिर्द अब छोटी भीड़ जम गयी थी। भीड़ पर उड़ती सी निगाह डालकर निखिल बोला—"अगर आप इनकी खातिरदारी करें तो इनके वोट भी तो आपको मिल सकता है।" "हा··· हा · हा···हा", पांडे जी कुर्सी पर बैठे-बैठे जी खोलकर हंसे। हँस लेने के बाद बोले—"इनको पास बिठाकर हलवा-लड्डू-पूरी खिलाने और जमकर इनकी खातिरदारी करने के बाद भी ये वोट अपनी ही जाति के उम्मीदवार को देंगे। चाहे उससे कोई फायदा हो या न हो। यहां गाँव में पहले जाति की बात आती है, फिर देश समाज या राष्ट्र की बात।"

"पर···पर ··" निखिल कुछ कहने जा रहा था पर कह नहीं सका। इसी बीच उत्तेजित बटेसर यादव ने जाति प्रथा के खिलाफ एक संक्षिप्त भाषण दे दिया था और अपने चेले-चमचों के साथ कूच कर गये।

किसी ने उनको रोकने की कोशिश नहीं की। नरसिंह बाबू ने भी नहीं। सभी को पता था, ऐसा ही होता है। बटेसर यादव को भी पता था, ऐसा ही होगा। और अगर सामने चुनाव नहीं होता और वे उम्मीदवार नहीं होते तो, उन्हीं के खेमे के चमचों के अनुसार, श्री बटेसर यादव को भी 'बैकवर्ड' की तरह ही भोज खाकर चुपचाप घर वापस चले जाते।

···तब तक फेरे लग चुके थे, क्योंकि रुठे हुए दुल्हे को मनाने के लिए नरसिंह बाबू स्कूटर के रुपये दे चुके थे। स्कूटर के रुपये पाने के बाद दूल्हा खुश नजर आ रहा था और तब, इस शुभ अवसर की गरिमा बढ़ाने के लिए बाहर से आयीं छोकरियों ने नाचना शुरू कर दिया था। छोकरियां किसी नौटंकी कम्पनी से मंगवायीं गयीं थीं।

निखिल के लिए टुकुर-टुकुर नाच देखना और सिगरेट पीते जाने के सिवा और कोई चारा नहीं था।

° ° °

"हर्र'''हट्'''ट्'''हर्र'''र्र''र्र'''!!" पता नहीं खेत के किस किनारे से एक विचित्र आवाज़ उभरी और कुछ गाय-बैल-भैंस एकाएक खेत की मेढ़ पर आ टपके। कुछ क्षणों के बाद वही आवाज़ फिर गूँजी तो मवेशी भड़के। मवेशियों के साथ-साथ निखिल भी भड़का। गाय-बैल उसी की ओर दौड़े आये। निखिल कूद कर खेत में जा घुसा।

"हा'''हो हा''हो हे''हे''!" एक हंसी, कभी ठहाका, कभी खिलखिलाहट बन कर खेत के बीचों-बीच उभरी। और फिर जिस तरह वह हँसी उभरी थी, उसी तरह खामोश हो गयी।

नहीं वह हँसी किसी लड़की की नहीं थी। कोई पुरुष हंसा था। पर उस हँसी में शिशुओं की किलकारी जैसा-आकर्षण था। बहुत सहज-सरल और मोहक थी वह हँसी।

बहुत उदास और अनमना था निखिल अखबार के लिए रपट डिसपैंच कर वापस लौट रहा था। इस निर्मल हँसी से जैसे उसकी सारी उदासी पलभर में गायब हो गयी। वैसे निखिल की उदासी की कोई खास वजह हो, यह बात नहीं। अखबार वाले फील्ड में जाकर रिर्पोट भेजते हुये इस तरह उदास हो ही जाते हैं। मसलन सही खबरें भेज न पाने की विवशता से उदास होते हैं। हिंसा की तैयारी होते देखकर भी पुलिस तथा सरकारी कर्मचारियों की उदासीनता देखकर उदास होते हैं। बूथ कैंपचरिंग की तैयारिया, हरिजनों को वोट न डालने देने के षड्यंत्र से उदास होते हैं। 'चुनाव' शब्द का लोकतंत्र के नाम पर एक फूहड़ मजाक बनते देखकर और अखबार में इन सब का जिक्र न कर सकने की विवशता आदि से कोई भी ईमानदार आदमी उदास होगा ही। एक गलत नौकरी को झेलते रहने की विवशता बड़ी जान लेवा होती है। उस पर तुर्रा यह कि निखिल की भेजी गई रपटें इन शीर्षक से छपी— 'मायागंज संसदीय चुनाव : लोकतंत्र की सर्वोच्च परम्परा।', 'प्रख्यात लोकप्रिय जनसेवी एच॰एल॰ परदेसी सबसे आगे', 'मायागंज चुनाव में जांत-पांत की दीवार टूट गयी !' आदि, आदि।

बहरहाल वह छांदिक हँसी सुनते हुये निखिल को लगा, वह या तो बंदर की तरह या फिर गाय-बैल की ही तरह उछल कर खेत में जा

घुसा होगा और उसकी यह हरकत देखकर किसी को हँसी आ गयी होगी। पर कौन हो सकता है यह?

निखिल को ज्यादा देर तक इंतजार नहीं करना पड़ा। कुछ ही क्षणों में उसने देखा, खेत से जानवर हंका कर छः फुट लम्बा जो युवक उसके सामने से गुजर रहा है, निखिल ने उसे पहले देखा है। यही वह आदमी है, जिसका जिक्र परमेश्वर ने उससे किया था, जिसे वह पहले दिन नरसिंह बाबू के हाथों निर्मम रूप से पिटते देखा है, और जो आज भी नरसिंह बाबू के पास बंधुआ मजदूर है। पर निखिल को उसका नाम याद नहीं आया। निखिल को देखते ही उसके चेहरे का रंग स्याह पड़ गया। शायद अपनी हँसी पर उसे अफसोस हो रहा था। इस छोटी सी मासूम भूल पर वह अपने मालिक से पिट भी सकता था।

"तुम्हारा नाम क्या है भाई?" निखिल ने उसकी दो बड़ी-बड़ी मासूम आँखों में बारी-बारी से झांका।

पगडंडी पर आगे बढ़ते उसके कदम रुक गये। बांस की तरह सीधा तना हुआ, छः फुट लम्बा, काला और किसी ग्रीक भास्कर्य की तरह आकर्षक उसका शरीर सामने की ओर झुक गया। शायद उसने झुक कर निखिल को सलाम किया। लेकिन वह चुप ही रहा, चेहरे पर एक डरावनी खामोशी ओढ़े।

"भाई, मैंने तुम्हारा नाम पूछा···" निखिल ने अपना प्रश्न दोहराया।

किसी बंधे जानवर की तरह सहमी, दो बड़ी-बड़ी आँखें थरथरायीं। फिर उन मासूम पुतलियों में भय की परछांईयां उभरीं। वह आदमी डर गया। संभवतः निखिल के स्नेहिल संबोधन से। जीवन में पहली बार मालिक संप्रदाय का कोई व्यक्ति शायद उससे इतने प्यार से बात-चीत कर रहा था।

डरकर ही शायद उसने भाग जाना बेहतर समझा। पर निखिल उसका रास्ता रोके, पगडंडी पर खड़ा था।

"ग · णे···सी !!" रुक-रुक कर उसने जबाव दिया। जबाव देते हुए शायद गणेसी ने सोचा, उसके मालिक के अतिथि के साथ यथा संभव

संभलकर बात-चीत करनी चाहिए।

"हां, गणेसी।" निखिल को याद आया, "भाई, तुम वोट दे रहे हो?" रुक कर निखिल ने पूछा, "तुम इजाजत दो तो पूछें किसे वोट दे रहे हो! गणेसी अब चुप रहा। काफी देर तक इंतजार कर लेने के वाद भी उसकी ओर से कोई जवाव नहीं आया। हां उसके चेहरे पर चिंता की रेखायें जरूर उभरी। उसे संभवतः इस बात पर आश्चर्य हो रहा था, आज मालिक वर्ग का एक प्रतिनिधि गाली, लात, घूंसे की बजाय बहुत ही प्रेम पूर्वक उससे बातें क्यों और किस स्वार्थ के लिए कर रहा है?

"तुम वोट दे रहे हो?"

उसने सिर हिलाया। जिसका अर्थ है, हां भी हो सकता है और नहीं भी।

"हर्ं···र्ं···र्ं·· हट···ट्···" एक भैंस, फिर खेत के अन्दर जा रहा था। वहां खड़े-खड़े उसने वह आवाज निकाली।

"एक सिगरेट पिओगे गणेसी?" प्रसंग बदलकर खुद एक सिगरेट सुलगाकर निखिल ने एक गणेसी की ओर बढ़ाया। उसके श्याम ललाट पर पसीने की बूंदे चुह चुहा आयीं। आँखों की पुतलियां नाच उठीं। सर पर बंधा मुरैठा उसने खोल कर बाँधा। फिर खोला। लेकिन सिगरेट की ओर उसका हाथ नहीं बढ़ा।

अब निखिल के पशोपेश में पढ़ने की बारी थी। बहुत सारा वक्त लेकर उसने सिगरेट का पैकट अपनी जेब के हवाले किया। परमेश्वर की हिदायत उसे याद आयी। गाँव में मजदूर, किसान, नौकर-चाकर, बंधुआ मजदूर आदि को अगर जरूरत से ज्यादा सम्मान दिखाया जाय तो वे सम्मान प्रदर्शन करने वाले को शक की निगाह से देखते हैं। उन्हें विश्वास ही नहीं होता, वे सम्मान के हकदार हैं।

पर अभी गणेसी की चंचलता ने निखिल को परेशान नहीं, मुग्ध किया। निखिल सोचता है, गणेसी ने क्या कभी फिल्म अभिनेता धर्मेन्द्र का नाम सुना है? निखिल को निर्माणाधीन फिल्म "रजिया सुल्ताना" में हब्शी याकूत की भूमिका में गहरा श्याम मेकअप लिए किसी फिल्म पत्रिका में छपी धर्मेन्द्र की एक तस्वीर की याद आयी। गणेसी हु-ब-हु वैसा

ही आकर्षक लग रहा है अभी। संभवतः धर्मेन्द्र से भी ज्यादा। गणेसी क्या जानता है, देखने में वह अभिनेता धर्मेन्द्र से भी ज्यादा पौरुषदिप्त है? आकर्षक हैं?

"तुम और फुलबसिया बंधुआ मजदूर हो?"

गणेसी चुप। जानवर किस तरह दौड़ने से पहले अपने पैर जमीन से रगड़ता है, गणेसी भी उसी तरह अपने पैर जमीन पर रगड़ उठा।

"बोलो गणेसी!"

"हाव!" छोटा सा जवाब।

"तुम्हें भर पेट खाना मिलता है?" निखिल शायद उसके कंधे पर हाथ रखना चाह रहा था—"कितने पैसे मिलते हैं साल में?"

अचानक बगल से गुजरती एक गाय की पूँछ उमेठी गणेसी ने। गाय उछलकर भाग खड़ी हुयी।

"हर्र·· र्र···र्र···हट्···ट···" गणेसी चिल्लाया और गाय के पीछे भाग खड़ा हुआ। वह शायद भागने का बहाना ढूंढ़ रहा था उसे मिल गया।

डूबते सूरज की रोशनी में दिगंत तक फैले खेत की एक संकरी पगडंडी पर खड़े होकर निखिल गणेसी से बातें करना चाह रहा था। शायद दोस्ती या एक मानविक संबंध भी स्थापित करना चाह रहा हो। पर यह हो न सका। गणेसी या गणेसी जैसे लोग, जो जीवन भर अपने परिवेश में घुटते आये हैं, होश सम्भालते ही जिन्हें अपमान, कुंठा, अत्याचार, भूख और पीड़ा सहते हुये जीना सिखाया गया है—वैसे लोग जरा कोमल या स्नेहिल आचरण से भौंचक रह जाते हैं और शायद तभी निखिल जैसे आदमी को शक की निगाह से देखते हैं।

गणेसी जैसे लोगों से बातचीत की भाषा भी निखिल या निखिल जैसे लोगों को पता नहीं है। बहुत सीमित, बहुत ही संक्षिप्त भाषा-ज्ञान के सहारे ऐसे लोग अपना जीवन-यापन करते हैं। अंग्रेजी में जिसे 'वोकाबुलरी' कहा जाता है, वह चीज गणेसी के पास शायद है ही नहीं। केवल सौ-पचास शब्दों से ही गणेसी अपना काम चला लेता है। गणेसी के शब्द-कोष में, 'सिगरेट,' 'भाई,' 'बंधुआ मजदूर',

'नाम' आदि शब्द शायद है ही नहीं। अगर ये शब्द हैं भी तो उनकी कोई अहमियत नहीं।

गाय-बैलों के पीछे बेतहाशा दौड़ता हुआ गणेशी को पगडंडी पर खड़े-खड़े निखिल देखता रहा कुछेक क्षण। लुप्त होते हुये उस दृश्य को देखते-देखते उसे लगा लाखों-करोड़ों गणेसियों के इस देश में 'वोट' 'चुनाव,' 'लोकतंत्र,' 'संसद', 'नागरिक अधिकार,' 'प्रभुसत्ता' 'सत्यमेव जयते' आदि शब्द कितने विद्रुपमय, कितने भद्दे, कितने अर्थहीन और खोखले हैं ! मुट्ठी भर लोगों ने इन शब्दों का भरपूर फायदा उठाया है जबकि गणेसी-जैसे लोग इन शब्दों की बुनियाद बनकर खड़े हैं। पता नहीं कब गणेसियों को पता चलेगा, उनका अन्नदाता नरसिंह बाबू नहीं हैं, बल्कि गणेसी ही नरसिंह बाबू का अन्नदाता है जो जीवन भर, सपरिवार उनके खेत में अनाज उगायेगा और बदले में एक आध पाव सत्तू खाकर दिन गुजार देगा। फिर यही गुलामी, विरासत में उसके संतानों को मिलेगी।

इस देश में कभी गणेसी जैसे लोग नरसिंह बाबू का अन्नदाता बन भी पायेगा ? कौन जाने ! इस देश में गणेसी जैसे लोगों को कभी भी 'चुनाव' या 'वोट' जैसे शब्दों का सही अर्थ समझने दिया जायेगा ? कौन जाने ! पर हर चुनाव में उनसे वोट डलवाया जायेगा और अगर खुदा-न-खास्ते, वें वोट डलवाने वालों की मर्जी के खिलाफ जाने की कोशिश करेंगे तो उनकी झोंपड़ी जलेंगी, औरतें लूटेंगी, उन पर गोली और लाठी बरसेंगे।

कभी-कभी निखिल को आश्चर्य होता है, गणेसी जैसे लोग जिंदा कैसे रहते हैं ? अर्धाहार, अनाहार जिंदगी के पचास, साठ, सत्तर सालों तक उनकी धड़कनें चलती कैसे रहती हैं ?···काफी वर्ष पहले एक प्रख्यात समाजवादी नेता ने संसद में कहा था, इस देश के लोगों की औसत मासिक आय तीन आने है। इस पर उस वक्त के सरकारी पक्ष की ओर से, अर्थशास्त्रियों की सहायता लेकर, आंकड़े दिखाकर कहा गया था,—'यह आँकड़ा गलत है। मासिक आय तीन आने नहीं सात आने है।'

हंसी आती हैं निखिल को। क्या फर्क है तीन आने और सात आने में। और आज ? आज हालत यह है कि साठ प्रतिशत जनता को एक

वक्त का खाना भी नसीब नहीं होता है।

निखिल ने एक दिन परमेश्वर से जानना चाहा था, कैसे जिंदा रहते हैं गणेसी जैसे लोग ?

"जादू !" हंसकर परमेश्वर ने जवाब दिया था—"महज जादू के बल पर !"

० ० ०

उपचुनाव होने के कारण, यह चुनाव यों भी चर्चा का विषय बन गया। मायागंज, मकसूदपुर, खंजरपुर या शिवपालगंज में नहीं, बल्कि इन इलाकों के बाहर। ज्यों-ज्यों चुनाव की तारीख करीब आती गयी। सभा-समारोहों का ताँता बंध गया। केन्द्र से और राज्य की राजधानी से छोटे-बड़े-मझौले; सभी आकार और साइज़ के नेता एक-एक कर या एक साथ आये। फलस्वरूप इन गांवों के ऊपर अक्सर हेलिकॉप्टर मंडराने लगे, कई नये-नये हैलिपैड बन गये , नयी-नयी सड़कें बनी और लाखों की तादाद में रंगीन पोस्टर दिवारों से चिपके। पर आश्चर्य, जिस संसदीय क्षेत्र में चुनाव हो रहा था, उस क्षेत्र की जनता में न तो सरगर्मी देखी गयी और न ही कोई उल्लास।

भारी, वजनदार नेता कभी अकेले नहीं आते। जब भी आते हैं, वे अपने साथ सादी वर्दी की पुलिस सिक्युरिटी, जासूसों के अलावा चेले-चमचों की कतार भी लाते हैं। ऐसे भारी-भरकम नेताओं, मंत्रियों के आगमन के फलस्वरूप धर्मशालाएँ, उल्लेखनीय जमींदारों के बँगले, शहर के रेस्टहाऊस आदि हमेशा भरे रहने लगे।

सभायें हुयीं। गरमा-गरम भाषण दिये गये। तालियों की गड़गड़ाहट से सारा माहौल गूंज उठता। इस अनग्रसार और पिछड़े संसदीय क्षेत्र को उन्नत बनाने के वायदे किये गये—जैसा कि हर चुनाव-सभा में हर किस्म के नेता करते हैं।

गणेसी जिस तरह भेड़-बकरी को घेरकर चराने ले जाता है, वैसे ही मायागंज की जनता को घेरकर सभाओं में लाया जाता। जब तालियाँ बजाने का इशारा किया जाता, वे ताली बजाते। जब नारा लगाने का इशारा होता, वे नारे लगाते और अंत में जय-जयकार करते हुये अपने घर

आकर, रुखा-सूखा खाकर सो जाते ।

चुनाव के समय हमारे देश में अक्सर जिला या ब्लॉक-स्तर के अधिकारियों का तबादला होता है । अधिकारी गण अगर शासक दल के उम्मीदवारों का समर्थन नहीं करते या उनकी मदद नहीं करते तो चुनाव के ऐन पहले या तो उसका पत्ता साफ कर दिया जाता है या उनका तबादला होता है । हमारे देश में ऐसे क्षेत्र कम ही होते हैं, जहाँ चुनाव अपनी समस्त गरिमा लिये हुये, सर्वोच्च लोकतांत्रिक पद्धति के अनुसार निष्पक्ष हुये हों । असरदार या जीतने वाला उम्मीदवार, इसे अपना हक मानकर चलता है कि अधिकारी उनकी मदद करेंगे । चुनाव के समय अधिकारियों ने अगर मदद की और वह उम्मीदवार जीत गया तो उन अधिकारियों की पांचों ऊँगली घी में और सर कढ़ाई में समझा जाना चाहिये । चुनाव के बाद वे अधिकारीगण जिनसे जनता निष्पक्ष सेवा माँगती है; पदोन्नति, डेपुटेशन, पुरस्कार वगैरह से सम्मानित किये जाते हैं । उन अफसरों के भ्रष्ट आचरण को 'वफादारी' की संज्ञा दी जाती है । संक्षेप में अफसरों द्वारा भ्रष्ट आचरण भी चुनाव का एक अंग है । अक्सर जो अधिकारी चुनाव के समय भ्रष्टाचार में शामिल नहीं होते और अपनी छवि 'टॉप गियर' पर रखते हैं, कुछ ही वर्षों में उनकी छवि धूमिल हो जाती है और उनकी हालत उस जीर्ण गाड़ी की तरह हो जाती है, जिसका गियर थोड़े से हिचकोले से अंतिम गियर पर जा गिरता है ।

बहरहाल, चुनाव शुरू होने के तीन-चार दिन पहले मायागंज संसदीय चुनाव क्षेत्र में काफी बड़ी संख्या में नये-नये चेहरे देखे गये । वहाँ के लोगों के लिये यह खतरे की घंटी थी पर खतरे की घंटी होते हुये भी यह उनके लिये कोई नयी बात नही थी । लगभग हर चुनाव में बाहर से लठैत गुंडे मँगाये जाते हैं । अक्सर सारे महत्वपूर्ण उम्मीदवार अपनी जाति के वोटरों के वोट डलवाने के लिये और दूसरी जाति के वोट रुकवाने के लिये गुंडों-लठैयों का सहारा लेते हैं । सबसे दयनीय हालत हरिजनों की है । साहित्यिक भाषा में लिखते हुये 'हरिजन' शब्द का इस्तेमाल किया जा रहा है अन्यथा गाँव में ऊँची जाति के लोग इनके पेशे को लेकर इन्हें 'चमार' 'जुलाहा', मेहतर आदि संबोधन से संबोधित करते हैं ।

कोई या तो इनका वोट रुकवाना चाहता है या फिर कोई इनका वोट हथियाना चाहता है। ऊँची जाति के उम्मीदवार चाहते हैं, इन्हें वोट डालने ही न दिया जाय। इन्हें वोट डालने से रोकने या फिर इनके वोट अपने पक्ष में करने का काम इस सम्प्रदाय में रुपये, पैसे, शराब, ताड़ी, ठर्रा बांट कर दिया जाता है। इससे काम चले तो ठीक वर्ना इन्हें घेरकर इनके घर जलाने से लेकर, पोंलिग बूथ में बमबारी, लूट-खसोट, दंगा-फंसाद तक कर इन्हें तथा अन्य विरोधी वोटरों को दूर रखा जाता है। गाँवों में 'रिंगिग' का सबसे सहज और सबसे व्यापक तरीका यह है कि पोलिंग शुरू होते ही आधे घंटे के अंदर चुनाव-बूथ को घेरकर सबसे प्रभावशाली उम्मीदवार के गुंडे मतपत्रों पर ठप्पा लगाकर उसे बक्से में डाल देते हैं। विरोधी पक्ष के मतदाता या एजेंट अगर हो-हल्ला करे तो उन्हें हड़काने के लिये दो-चार बमों का फेंकना ही काफी है। चुनाव अधिकारी या तो अपनी जान बचाने में लगे रहते हैं या उन्हें प्रभावशील उम्मीदवार की मदद करने में लगना पड़ता है। जिन चुनाव अधिकारियों में दम-खम है और जो उन बचे-खुचे शेष आदमियों में से हैं जो आज भी इमानदारी को जीवन का मूलमंत्र मानते हैं; वे इसका प्रतिवाद करते हैं। अक्सर बाद में। उनकी रिपोर्ट अगर सही पायी गयी तो प्रभावित अंशों पर पुनः चुनाव होते हैं। पर उन अधिकारियों की राय अगर शासक वर्ग के विपरीत जाती है तो उन्हें इस ईमानदारी की 'कीमत' चुकानी पड़ती है।

हाल ही में मायागंज संसदीय क्षेत्र में आये एक युवा कलक्टर ने गांव में संदेहास्पद लोगों को घूमते फिरते देखकर चुनाव के वक्त शांति भंग होने के डर से उन्होंने उन व्यक्तियों को गिरफ्तार करना शुरू किया। कुछ को गाँव से बाहर भी कर दिया जाने लगा।

चुनाव के धाँसू उम्मीदवार, जनाब एच. एल. परदेसी के समधी, ठेकेदार साहब ने इसे रोकने के लिये कलक्टर साहब को पहले खुश करने की योजना बनायी। 'खुश' करने के जितने उपाय हो सकते थे, अपना लिये गये। पर वह युवा कलक्टर बड़ा ही ढीठ निकला। इतना ही नहीं, पुलिस अधीक्षक को भी उस कलक्टर ने बरगलाना शुरू कर

दिया । चुनाव के आते-आते बात बिगड़ती चली गयी । विरोधी पार्टी के उम्मीदवार शांतिपूर्ण तरीके से भाषण करते और वाह-वाही लूट ले जाते। तमाम पोलिंग-बूथों में उस युवा कलक्टर ने छाँट-छाँट कर आदमी तैनात करना शुरू किया । एक दिन में पाँच किलोमीटर के दायरे में उस युवा कलक्टर ने एक से अधिक चुनाव सभा करने की इजाजत नहीं दी। बड़ी से बड़ी सभा में कहीं भी अगर जरा सी गड़बड़ होती तो हाथ में छोटा सा 'बैटन' लिये, अकेले, निहत्थे—किसी अभिताभ बच्चन टाईप फिल्मी पुलिस-अफसर जैसी स्टाइल में वे सभा में घुस जाते । उन्हें देख दंगाइयों की सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती ।

जो भी हो, बात अधिक आगे बढ़ नहीं पायो । एक दिन अचानक ऊपर से हुक्म आया, कलक्टर साहब और पुलिस अधीक्षक साहब, दोनों के कार्यों से खुश होकर, उन्हें एक बड़ी और गम्भीर जिम्मेदारी देकर, जनता के हित में एक कठिन महकमा संभालने के लिये मायागंज से बाहर भेजा जा रहा है ।

इस तबादले के बाद मायागंज से बाहर भगाये लठैत और गुंडे, मूँछों पर ताव देते हुए गांव में पुनः वापस आ गये और जनाब एच.एल. परदेसी की जीत अब सुनिश्चित समझी जाने लगी ।

० ० ०

जनाब एच.एल.परदेसी की कन्या नूपुर और पत्नी को जहाज घाट पर विदाकर परमेश्वर और निरिवल लौट रहे थे । ज्यों-ज्यों चुनाव का दिन पास आ रहा था, सभी उसमें उलझते जा रहे थे । किसी के पास अब समय नहीं रह गया था, नूपुर के नखरे उठाये । वैसे बिसेसर अब भी नूपुर के आदेशों का पालन सहर्ष करना चाहता था पर ठेकेदार की हवेली में उस दिन नुपुर के नहाते वक्त जो कांड हुआ था उससे नूपुर और परदेसी जी के साथ-साथ उनकी पत्नी भी बिसेसर पर क्षुब्ध थीं । फिर भी विसेसर की भोथरी अनुभूति और लंठ प्रवृत्ति उसे नूपुर के पास जाने से रोकता नहीं था। तभी वह उस पार जाकर, नूपुर और उसकी मां को ट्रेन पर बिठाने के लिये सहर्ष तैयार हो गया था ।

परदेसी जी भी चाहते थे, चुनाव परिणाम आने से पहले, कम से

कम उनकी कन्या और पत्नी दिल्ली पहुँच जायें और उनकी अपनी पार्टी में उनके पुनः घुसने का मार्ग प्रशस्त करें। आजाद उम्मीदवार तो वे नाम के वास्ते हैं। तभी उन्होंने पत्नी और कन्या को दिल्ली भेज दिया।

सुबह जहाज घाट से लौटते वक्त निखिल ने देखा, एक प्रौढ़ किसान, सर पर मुरेंठा बाँधे, तहमद पहने, खाली बदन खेत में काम कर रहा है। परमेश्वर को देखकर वह अचानक उठ खड़ा हुआ।

"कितने बजे हैं बेटा?" उस किसान ने पूछा।

"आठ बज रहे हैं किसुन चाचा!" परमेश्वर ने घड़ी देखकर कहा।

"ऑय?" किसुन चाचा घबड़ाये—"तब तो मारा गया बेटा?" उन्होंने दौड़ना शुरू किया।

"क्यों क्या बात हो गयी?" परमेश्वर बोला—"दौड़ क्यों रहे हो?"

"अरे भाई आज शनिवार है।" दौड़ते हुये रुककर, कादो-कीचड़ से सने हाथ सर पर ले जाते हुये अफसोस की भंगिमा में वे बोले—"भूल गया था, आज भोरीआ स्कूल है।"

"क्यों, तुम्हारा लड़का क्या कर रहा है?"

"कर क्या रहा है ससुरा!" किसुन चाचा ने सर पीट लिया—"आवारा गर्दी—चुनाव परचार!! ससुरा न तो स्कूल जाता है और न ही खेत पर काम करता है। भला परचार से पेट भरेगा?" किसुन चाचा दौड़ते हुये ओझल हो गये।

खेत का काम छोड़कर एक प्रौढ़ को स्कूल की ओर दौड़ लगाते देख निखिल चौंका। उसे अच्छा ही लगा। पिछड़े गांवों में भी शिक्षा का प्रसार हो रहा है तब।

"यहाँ एक किसान का लिखने पढ़ने का आग्रह देखकर अच्छा लगता है!" निखिल ने पूछा—"पर प्रौढ़ों के लिये तो रात्रि-पाठशाला है। प्रौढ़ शिक्षा तो रात में दी जाती है!"

"रात्रि-पाठशाला?" परमेश्वर चौंका—"रात में पाठशाला क्योंकर बिठाया जाय? किरासन तेल मिलता है भला? कौन किरासन का खर्चा देगा?"

"यार, एक किसान दिन में अपने खेत का काम छोड़कर पढ़ने जायेगा—यह तो कोई बात नहीं हुयी !"

"किसान पढ़ने जायेगा ?" परमेश्वर दंग –"किसुन चाचा पढ़ने जायेंगे ? तुम कह क्या रहे हो ?"

"वे अभी-अभी पढ़ने गये न ?"

"तुम क्या सोचते हो, किसुन चाचा पढ़ने गये ?"

"तब ?"

"किसुन चाचा यहाँ के प्राइमरी स्कूल के शिक्षक हैं। राममोहन बाबू के कलिग ?"

"अरे !" निखिल चौंका—"वह मजदूर सा दीखने वाला आदमी शिक्षक !"

"जी हाँ !" परमेश्वर हंसा—"आप खूब फरमाते हैं, आप गांव और ग्रामीण जनता से भली भाँति परिचित हैं। अब बताइये आप गांव को कितना जानते हैं ? आपने शायद कल्पना तक नहीं की होगी—किसुन चाचा शिक्षक हैं—बल्कि एक आला दर्जे के शिक्षक हैं।"

निखिल खामोश रहा। एक शहरी शिक्षक की जो छवि उसकी जेहन में है, उससे किसुन चाचा कभी मेल नहीं खाते। स्कूल शिक्षक की तनख्वाह कम है पर शहरी शिक्षकों को साफ धोती, साफ धुली कमीज पहननी पड़ती है। महीने के आखिर में घर का चूल्हा-चौका न भी चले तो भी चेहरे पर एक प्रशाँत मुस्कराहट ओढ़े रहना पड़ता है उन्हें शहर में। घर पर अगर अखबार खरीदने की औकाद नहीं है तो वे चाय की दूकान में केवल एक कप चाय मंगवाकर उसे धीरे-धीरे पीने के बहाने पूरा अखबार चाट जायेंगे। फुरसत या लंबी छुट्टी के समय चाहे भूखों मरे पर शारीरिक श्रम कर दो पैसे नहीं कमायेंगे। बहुत ज्यादा कुछ कर लिया तो ट्यूशन कर लिया। घिसते रहेंगे चंद बच्चों को लेकर।

"किसुन चाचा पर गांव के काफी लोग नाराज हैं !" परमेश्वर ने चलते-चलते कहा।

"क्यों भई ?"

"किसान होकर प्राइमरी स्कूल की टीचरी मैनेज करने के कारण।

सरकारी स्कूल है। तनख्वाह दो-तीन माह बाद ही सही, मिलना तो तय है। इस इलाके में नकद रुपये की बड़ी कमी है किसानों के पास। अगर प्रकृति ने साथ दिया अथवा बड़े-बड़े जमींदारों की कृपा रही तो अनाज के ढेर लग सकते हैं कभी-कभी; पर नकद रुपया उनके पास बहुत कम रहता है। बल्कि खेती-बारी से उलझे किसानों के हाथ साल में छः माह एकदम खाली रहते हैं। किसुन चाचा के साथ ऐसी बात नहीं। उन्हें लगभग पाँच सौ रुपये प्रतिमाह मिलते हैं। हेडमास्टर राममोहन बाबू पचास रुपये ले लेते हैं। सेक्रेटरी नरसिंह बाबू पिचहत्तर रुपये लेते हैं। उनके पास नेट बचते हैं तीन सौ पचहत्तर रुपये !"

"ये लोग तनख्वाह से रुपये क्यों काट लेते हैं?"

"धान काटने के मौसम में किसुन चाचा जब स्कूल नहीं जा पाते, तब वे अपने बीस वर्षीय सुपुत्र को स्कूल भेज देते हैं। उनका पुत्र उनके बदले क्लास ले लेता है। हेडमास्टर और सेक्रेटरी महोदय इस 'घोर अनियमितता' को बर्दाश्त करते रहने के लिये उनकी तनख्वाह से रुपये काट लेते हैं।

"हद हो गयी?" निखिल ने अब अपना सर पीट लिया—"पर··· पर तुम्हारे किसुन चाचा पढ़े लिखे किसान हैं?"

"मैट्रिक फेल हैं।"

० ० ०

"एक जाम मेरे लिये भी !" दरवाजे पर रुककर दिलावर कहलाने वाला वह आदमी हँसा—"स्कॉच पीये काफी दिन हो गये।"

ड्राइंग रूम में गिलास में स्कॉच उड़ेलते परदेसी के एक चमचे के हाथ ज्यों के त्यों रुक गये। कुछ दूर सोफे पर बैठे ठेकेदार का मुँह खुला का खुला रह गया। मँहगी कालीन पर बैठे दो-तीन खास यार दोस्त सकते में आ गये।

ड्राइंग रुम के अंदर दाखिल होकर उसने सबसे पहले कमरे का दरवाज़ा अंदर से बंद किया। फिर चप्पल उतारे वगैर, छोटे-छोटे कदम भरता हुआ, नाटा सा वह आदमी सोफे पर आ बैठा। फर्श पर बिछी शालीन पर कदम-छापनुमा कीचड़ के धब्बे उभर उठे। वह खुद भी उस

शालीन परिवेश में एक धब्बे की तरह उभरा।

ड्राइंग रुम से सटे एन्टी रुम में परदेसी शायद सिगरेट लेने गये थे। वहीं खड़े-खड़े सिगरेट सुलगाते हुये उन्हें पता चला, वह आदमी कमरे में आया है। चुनाव शुरु होने के ठीक बारह घंटे पहले।

एक सिहरन सी दौड़ जाती है परदेसी के शरीर में। जड़ हो जाते हैं कदम पल भर के लिये। हिरन हो जाता है स्कॉच का नशा। गिरधारी के भाई की धुँधली सी तस्वीर आंखों के सामने उभरती है।···बदला लेने आया है दिलावर उससे, जेल से भागकर!

लेकिन दिलावर उस किले को कैसे भेद सका जिसके अंदर वे रह रहे हैं इन दिनों? तब क्या···तब क्या बहुत पास के किसी आदमी ने उसके पैरों नीचे से कालीन खींच ली है?···गद्दारी की है किसी ने?

"कहां है तुम्हारा लीडर ठेकेदार?" एक क्रूर ठहाका गूंजा—"कहां छुपे हैं जनाब एच०एल० परदेसी?"

ड्राइंग रुम की दीवारों से टकराकर, झीने-भारी पर्दे से रिसकर उस आदमी की आवाज एन्टीरुम तक पहुंच रही थी। उस क्रूर हंसी में आक्रोश हिंसा, घृणा—सभी कुछ मिले जुले थे।

·· कौन हो सकता है जिसने दिलावर को यहाँ तक पहुंचाया है? चुनाव में उनकी जीत सुनिश्चित जानकर अपनी ही पार्टी के किस आदमी ने उसके साथ धोखा किया है ऐन वक्त पर?

"एह! डर गये हो ठेकेदार!" वह शायद कमरे में चहल कदमी कर रहा था—"तुमसे मेरी कोई दुश्मनी नहीं। मुझे तो जनाब एच० एल० परदेशी चाहिये।"

···हो सकता है, आज की रात उनकी जिंदगी की आखरी रात हो। पर इतनी जल्दी, इतनी आसानी से खुद को मौत के हवाले वे कर देंगे? ···कैसे किस, तरह बचा जा सकता है!···रात के दो बजे, ठेकेदार की हवेली के आऊटहाउस में कौन उन्हें बचाने आयेगा? किसी के चिल्लाते ही या थोड़ी सी आहट से ही दिलावर की पिस्तौल गूंज उठेगी!

"डर?" ठेकेदार शायद हकला रहा था—"डर काहे का? आओ ···आओ भ···भाई···"

"मजाक छोड़ो—परदेसी को निकालो।"

"परदेसी ? य···यहाँ तो परदेसी नहीं—"

"चुप बे हरामी ?" वह अब दहाड़ उठा—"मेरे पास खबर है, तुम सब सारी रात यहीं रहोगे···सुबह यहीं से चुनाव का संचालन करोगे !"

···साफ पता चलता है, दिलावर को पॉलिटिकल प्रोटेक्शन मिल गया है··अन्यथा शहर के जेल से भागकर, इतना कड़ा पहरा लाँघकर वह यहाँ नहीं पहुँच पाता।

"बम लेकर तुम्हारे आदमी सारे बूथों पर छा गये हैं !" पर्दे के छोटे से फासले के बीच से वह बेचैन चीते की तरह अस्थिर दिखा—"···और हरिजनों और विरोधी पार्टी के कमज़ोर वोटरों की बस्ती में आज की रात आग लग चुकी है ठेकेदार···"

'खैर, कोई बात नहीं। हो जिंदगी की आखरी रात ! रहे सामने खड़ा, हथियारों से लैस एक खूँखार हत्यारा !' परदेसी ने खुद को आश्वस्त किया--'पर मैं एक लीडर हूँ। दिलावर जैसे सैकड़ों आदमी रोज़ मेरे कदम चूमते हैं। मेरे एक इशारे पर इनकी जिंदगी बनती है, बिगड़ती है··एक नेता को डरना नहीं चाहिये···भयंकर से भयंकर परिस्थिति का हंसते हुये सामना करना चाहिये। और···और सच बात तो यह है कि दिलावर क्या मुझसे बड़ा कातिल है ?'

"बैठो दिलावर, बैठो ··", कुछ क्षण चुपचाप पर्दे के उस पार खड़े होकर परदेसी ने अपनी बेतरतीब साँसों पर काबू पायी—"मैं अभी आया।"

कितना सहज, कितना संयत और अनुत्तेजित स्वर था ! ठीक आकाशवाणी के घोषक जैसा या आकाशवाणी से प्रसारित ध्वनि नाटकों के पात्रों के संवाद जैसा !

वह बैठ गया।

परदेसी ने ड्राइंग रूम में कदम रखा। बर्फ की तरह जमी चुप्पी। बुत की तरह फर्श से जड़े लोग।

ऊँ हूँ, इस तरह काम नहीं चलता। सामने सोफे पर बैठे भोथरी अनुभूति के इस हैवान का सामना नर्मी, सख्ती या रहम की भीख मांग-

कर नहीं की जा सकती है। एक एकदम भिन्न, सम्पूर्ण अपरिचित मुद्रा से उसका सामना करना चाहिये।

सिगरेट का कश लेते हुये और उसे 'हैलो' कहकर एक नेताई मुस्कान बिखेरते हुये, बहुत धीरे-धीरे कारपेट के ऊपर लगभग तैरते हुये परदेसी संभाव्य मृत्यु की ओर बढ़ गये। एक उड़ती सी निगाह सोफे पर बैठे उस आदमी को छू गयी। उसका हाथ बिजली की फुर्ती से, कमर में खोंस रखे पिस्तौल पर जाकर थम गया। परदेसी जान गये, दिलावर के पिस्तौल में उनकी मौत कैद है। किसी भी क्षण, बिजली की फुर्ती से वह उस मौत को परदेसी के सीने में धंसा सकता है। वे यह भी जान गये, वह आदमी गोली चलाकर, बे रोक-टोक बाहर जा सकता है। उसे फिलहाल कोई नहीं पकड़ेगा। पर 'काम' हो जाने के बाद वह बच भी नहीं सकेगा। या तो जेल के अन्दर सड़ेगा या फिर बाहर किसी और की गोली का शिकार बनेगा।

मौत को लगभग छूते हुये परदेसी आगे बढ़ गये। दीवार के पास सजी स्टीरियो सेट की ओर।

"खबरदार, अगर चालाकी करने की कोशिश की…", उस आदमी की ऊँगलियाँ पिस्तौल की 'ग्रिप' थामे थी।

"इतनी बेसब्री अच्छी नहीं !" परदेसी दोनों हाथ ऊपर उठाकर एक सेकेंड रुके। फिर अपने केशों को संवारकर वे अपने हाथ नीचे ले आये। यह एक अदा भी हो सकती थी और उस आदमी के लिये संकेत भी कि वे हथियार का इस्तेमाल कतई नहीं करेंगे।

"भई, मैं कभी अपने पास आर्मस नहीं रखता ..।" परदेसी हंसे। उस पथरायी चुप्पी में उनकी हँसी बेतुकी नहीं लगी। बल्कि उस हंसी से तेज होती हुयी तीन-चार दिलों की धड़कनें थोड़ी स्वाभाविक हुई।

थोड़ा और समय चाहिये। बस, थोड़ा और ..

'यह दुनियाँ अगर मिल भी जाये तो क्या है…,' स्टीरियो से रिकार्ड गूँज उठा था—'…यह इंसा के भूखे रिवाजों की दुनियाँ…यह महलों, ये ताजों, ये तख्तों की दुनियाँ ..'

"साहिर लुधियानवी का नाम तुमने सुना है दिलावर !" उसी अदा

से लौटकर, उसके सामने सोफे पर बैठते हुये परदेसी ने कहा—"गुरुदत्त की फिल्म 'प्यासा में ये गीत लिखकर साहिर शोहरत की बुलंदियों पर पहुंच गये थे।"

वह आदमी एकटक परदेसी को देख रहा था। कमरे में मौजूद तीन-चार प्राणी अपने प्रिय नेता को विस्मय-विमुग्ध नेत्रों से देख रहे थे। ठेकेदार का मुँह अब भी खुला था। वे सोच रहे थे, क्या परदेसी इस चक्रव्यूह को भेद सकेंगे ?

"गुरुदत्त बहुत पहले गुजर चुके···," ऐश ट्रे में राख झाड़कर एक पेग बनाकर उन्होंने उसकी ओर चुपचाप सरकाया। उसे थमाया नहीं। वह अगर इनकार कर दे !

"आज खबर आयी है साहिर भी नहीं रहे—" पेग थोड़ा सरकाकर वे बोले।

"और कल आप भी नहीं रहेंगे—।" एक लंबी चुप्पी तोड़कर उसने कहा था—"मरने से पहले जरा यह बताइये, गिरधारी के भाई के खून में आपने मुझे क्यों फँसाया था ?"

परदेसी के चेहरे का रंग क्या स्याह पढ़ गया ? सिगरेट ऐश ट्रे में खोंस कर एक नया सिगरेट सुलगाते वक्त क्या माचिस की तीली की पीताभ लौ काँप गयी ?

बहस का यह समय नहीं है। खामोश रहने का भी नहीं। दिलावर के लिये जो शब्द या जैसा आचरण भिन्न अप्रत्याशित, या अनपेक्षित हो, अभी वैसे आचरण या वैसे शब्दों की आवश्यकता है। उसने तो इंगित दे दिया है - कुछ क्षण परदेसी के पास हैं। परदेसी चाहे तो इन क्षणों का भरपूर इस्तेमाल कर सकते हैं।

"बहुत अच्छी शराब है दिलावर—" परदेसी का गला क्या कांप गया ? शायद नहीं। वे रुककर, सोफे पर पसरते हुये बोले—"हम सब काफी थक गये हैं—"

"भाड़ में जाये आपकी शराब !" उसके चेहरे की नसें तन आयीं थी। "मेरे सवाल का जवाब चाहिये। आपके इशारे पर यह कत्ल हुआ था। तय था, आप मुझे बचायेंगे पर—"

"जला दो, जला दो यह दुनियाँ···यह महलों, ये ताजों, ये तख्तों की दुनियाँ···" फिल्म प्यासा का गीत गूंज रहा था।

'मैंने ?···मैंने तो कभी किसी को यह सब करने को नहीं कहा था। और न कभी कहता हूँ' यह जवाब होठों तक आकर वापस लौट गया। यह वक्त सवाल-जवाब का है ही नहीं।

विपरीत दशा से, तेजी से आती हुई सवारी को थोड़ा हटकर जिस तरह रास्ता दिया जाता है, उसी तरह, लगभग सौ मील की रफ्तार से आती हुई दिलावर के इस प्रश्न को परदेसी ने गुजर जाने दिया।

"दिलावर, तुम दिल्ली चलोगे ?" व्हिस्की की एक सिप लेकर, आराम सूचक 'आह' शब्द निकालकर कमरे की छत देखते हुये परदेसी बोले।

"दिल्ली ?" उस आदमी की आवाज़ में अवाक् विस्मय था। इस परस्थिति में परदेसी से ऐसे प्रस्ताव की उम्मीद नहीं थी।

कमरे की सिलिंग देखने का बहाना करते हुए परदेसी की शातिर, नेताई आँखें उस आदमी के चेहरे पर फैले विस्मय की रेखायें पढ़ सकती थीं।

"दिलावर, तुम जानते हो मेरी पहुंच कहाँ·तक है" सिगरेट से उड़ते नीलाभ धुंए का फीता देखते हुए, एक-एक शब्द तोलकर परदेसी बोले— "तुम जानते हो, मैं चाहूँ तो मंझधार में फंसी तुम्हारी तकदीर की नाव साहिल तक भिड़ा सकता हूँ। तुम जानते हो, मैं चाहूँ तो मुर्दे तक जला सकता हूँ और मैं चाहूँ तो जिंदा आदमी को मुर्दे में बदल सकता हूँ। मेरे एक इशारे पर जिंदगी बनती है—बिगड़ती है। मैं दिल्ली में तुम्हारी जिंदगी संवार सकता हूँ।'

"लेकिन··लेकिन···", दिलावर कुछ कहना चाह रहा था। "और···और तुम यह भी जानते हो", दिलावर को कुछ भी कहने का मौका दिये वगैर परदेसी बोले—"मैं यह चुनाव जीत रहा हूँ।"

क्रिकेट की भाषा में जिसे क्लीन बोल्ड कहते हैं, दिलावर के साथ वैसा कुछ तो नहीं हुआ पर जबंदस्त अपील होने के बाद, बल्लेबाज की आस्था जिस तरह डगमगा जाती है, दिलावर की आस्था भी उसी तरह डगमगायी।

"आज जिनके इशारे पर तुम नाच रहे हो" उसकी बातें नहीं सुनते हुये परदेसी बोले—"क्या गारंटी है, आज काम हो जाने पर कल वे तुम्हें दूध की मक्खी की तरह नहीं फैकेंगे ?···क्या गारंटी है, उनके एक इशारे पर कल तुम पुनः एक और कत्ल के इल्जाम में भीतर नहीं भेज दिये जाओगे ?"

"पर इस बात की भी क्या गारंटी है—आप मुझे फिर धोखा नहीं दोगे ?" श्वेत पत्थर पर परावर्तित सूर्य किरण की जो चमक होती है, वैसी ही चमक दिलावर की आँखों में उभरी—" उस उभरते लाजवाब नेता, गिरधारी के भाई के कत्ल के बाद आप मुझे बचाने वाले थे···"

सारी बातें सुनी नहीं जाती । एक व्ही० आई० पी० हर सवाल का जवाब भी नहीं देता । वस्तुत: प्रति दिन असंख्य शब्द वाक्य बनकर उन तक पहुँचते हैं। कौन-सा वाक्य उत्तर के लायक है और कौन सा नहीं, नेता लोग अच्छी तरह जानते हैं । इन बातों को किस तरह टाला जाता है ये भी उनसे बेहतर कोई नहीं जानता ।

साहिर का गीत समाप्त हो चुका था । रिकार्ड किर्र-किर्र की आवाज से घिस रहा था । चेहरे पर हलकी परेशानी की लकीरें फैलाकर बाँयी हाथ में स्कॉच का गिलास लिये परदेसी उठे । रिकॉर्ड बदल कर फिर अपने सोफे पर आ गये। बैठकर बोले—"आह !"

"··वह सुबह कभी तो आयेगी···", मुकेश पुनः साहिर का एक एल० पी० गा रहे थे—'माना कि अभी तेरे-मेरे, अरमानों की कीमत कुछ भी नहीं···'

"दिल्ली में मैं तुम्हें पॉलिटिकल प्रोटेक्शन दूंगा", परदेसी गहरा सिप लेकर बोले—"वहाँ तुम्हें पुलिस परेशान नहीं करेगी । तुम्हारी बाकी सजा माफ करवाकर, मैं तुम्हें वहां नौकरी दिलवाऊँगा···अच्छी नौकरी···यह फटेहाली, यह भागम-भाग· यह अफरातफरी खत्म होगी···हर पल मौत तुम्हारे सिर पर मंडराती है···मैं तुम्हें दिल्ली में जिंदगी दूंगा—एक नयी जिंदगी, सूरज की पहली किरण की ताजा, कोमल, स्निग्ध ।"

'दिल्ली' शब्द एक फिरकी की तरह, एक घिरनी की तरह परदेसी

और दिलावर के बीच घूमता रहा। वस्तुतः अब परदेसी बल्लेबाजी की स्थिति में आ गये थे, और दिलावर के हाथ से गेंद छीनकर कप्तान ने उसे जैसे फिल्डिंग करने भेज दिया था। एक निपुण बल्लेबाज की तरह, 'दिल्ली' शब्द उछालकर परदेसी ने जैसे एक छक्का मारा था। दिलावर इस विध्वंसकारी छक्के को रोक नहीं पाया।···कमर में अटकी पिस्तौल की पकड़ क्या जरा शिथिल हुयी? दिलावर की आँखों में क्या एक सुलझे भविष्य का सपना तौर उठा?·· सुलझी जिंदगी · शरीफ लोगों की तरह···परदेसी जी की छत्रछाया · दिल्ली·· दिल्ली दिल्ली!!

याद आया दिलावर को बचपन में बक्से में कैद तस्वीरों को चाभी से घुमाकर एक डब्बे वाला, गोल सुराख के सामने बच्चों को बैठाकर कहता—'दिल्ली का कुतुबमीनार देखो, दिल्ली का लालकिला देखो···'

वे दोनों खामोश रहे। इन दोनों के बीच दिल्ली 'शब्द' एक लहर की तरह आता-जाता रहा। और जब यह लहर सब्र की सीमायें तोड़ने वाली थी, दिलावर ने इस शब्द को सहारा दिया।

"दिल्ली जाकर मुझसे कुछ होगा भला!" बहुत उदास, बहुत बेमन से, पर आँखों में भविष्य के सपने सजोये उसने यह कह डाला साथ ही, कमर में खोंसी पिस्तौल की पकड़ पहले से ढीली हुयी। फिर कमीज के नीचे से उसने अपना हाथ बाहर निकाला। उसका हाथ खाली था।

परदेसी जीत गये। खुशी की एक सोत सीने में फूटा और चेहरे पर छाने-छाने को हुआ। परदेसी बच गये। जान बचने की खुशी। जिंदा रहने की खुशी। साथ ही दिलावर को नहीं, बल्कि दिलावर को जिन लोगों ने भेजा था, उन्हें हराने की खुशी।

"तो वायदा रहा?" दिलावर ने अब जाकर कहीं व्हिस्की की ओर अपना हाथ बढ़ाया था।

"वायदा-वायदा!" परदेसी कुर्सी से उठकर पुनः स्टीरियो की ओर जाते हुए बोले—"पीओ जितना चाहे!"

'इंसानों की इज्जत जब तक झूठी सिक्कों पे न तोली जायेगी, वह सुबह कभी तो आयेगी···'

रिकॉर्ड शायद टूटा था। पिन इन पंक्तियों पर बार-बार अटक रहा था। परदेसी ने स्टीरियो बंद कर दिया।

कमरे की खामोशी पिघल चुकी थी। तब तक फटाफट दो सिप लेकर दिलावर बाहर निकल चुका था और कमरे में मौजूद लोग भाव विह्वल होकर अपने लीडर को देख रहे थे।

लीडर हो तो ऐसा! शांत, साहसी, भयानक और दारुण! कौन

रोक सकता है ऐसे आदमी को एम० पी० बनने से ?

दिलावर जब चला गया था तो परदेसी ने फोन उठा लिया था। …लोग आश्वस्त हुए थे, दिलावर अब सुबह का सूरज देख नहीं पायेगा।

० ० ०

चुनाव होने तक और उसके बाद की घटनायें अप्रत्याशित नहीं थी। चुनाव में परदेसी एक लाख दस हजार वोट से जीत गये थे। चुनाव के पहले, उस रात जब परदेसी दिलावर को दिल्ली के लड्डू का स्वाद बता रहे थे, उसी समय मायागंज, खंजरपुर, मकसूदपुर, शिवपाल-गंज गांवों के बाहरी हिस्से एक 'रहस्यमय' आग की चपेट में आ गये थे। फूस और टाट के बने छप्पर पलक झपकते ही जलकर खाक हो गए थे। मिट्टी की दीवारें ढह गयीं थीं। …उन झोंपड़ियों में रहने वालों के लिए यह अग्निकाँड बहुत अप्रत्याशित नहीं था। हर चुनाव के वक्त उनके साथ यही होता है। वे चाहे वोट डालें या न डालें, कोई न कोई ऊँची जाति का सवर्ण उम्मीदवार उनसे नाराज हो जाता है। और उन्हें इस तरह खदेड़कर उनको वोट डालने से रोका जाता है। प्रतिवाद का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वे जानते हैं, ऐसा होता आया है और आगे भी ऐसा ही होगा। वे लगभग तैयार ही रहते हैं और सपरिवार अपनी-अपनी झोंपड़ी छोड़कर गाँव से बाहर भाग खड़े होते हैं। लौटते हैं चुनाव के बाद।

परमेश्वर इंजिनियरिंग कॉलिज लौट चुका था। परदेसी की जीत की आधिकारिक सूचना सुने वगैर। अब निखिल के गांव छोड़ने की बारी थी, पर परदेसी जी ने उसे रोक लिया था। एक भव्य और विशाल जलसे का आयोजन किया था ठेकेदार ने उनके सम्मान में। परदेसी का आग्रह था, निखिल उस जलसे में शामिल हो।

जलसे के एक दिन पहले, जहाज घाट पर अपने लौटने का टिकट रिजर्व करवा कर वक्त कटी के लिए घाट पर राधेराम की चाय की दुकान पर रुक गया था। अंदर पहले दिन की तरह ही भीड़ थी।

"आया जाय हाकिम !" राधेराम ने सलाम किया—"बैठा जाय।"

"चाय पिलाना भाई !" निखिल बैठता हुआ बोला—"क्या हाल है भाई !"

"हाल मालिक—" राधेराम की आवाज़ धीमी हो गयी—"बस बेहाल है !"

"क्यों भाई ?"

"आपको पता नहीं हाकिम ?"

"क्या ?"

"यही कि·· यही कि ", राधेराम गिलास में लेकर, दूध और थोड़ा सा बूरा डालकर बोला—"यही कि···चीनी नहीं मिल रही है, बूरे से चाय बना रहा हूँ ?"

"बस ?" निखिल हंसा—" तुम शायद असली हाल छुपा गये, है न ?"

'न···नहीं मालिक—" चाय का गिलास बढ़ाता हुआ राधेराम बोला-- "हाकिम आप तो अखबार वाले हाकिम है···आपसे क्या छुपाना ···सुना है परदेसी हाकिम तक आपको सलाम करते हैं—"

"अरे नहीं भाई।" राधेराम के भोलेपन ने निखिल को मुग्ध किया। उसे अब निखिल कैसे समझाये, वह परदेसी जैसे लोगों के हाथ की कठ-पुतली है !

"उधर देखिये हाकिम - जहाजघाट की ओर - एक मर्द और औरत देख रहे हैं न आप !··· दो चार झोली-पोटली लिये—", राधेराम बोला।

"हाँ देख रहा हूँ ··।' रेत पर असहाय-बेबस खड़े एक युवा ग्रामीण दम्पत्ति को देखते हुये निखिल बोला।

"ये स्वर्गीय बैतुल माँझी का लड़का चिरंजी और पुत्र बधू झालो है !" राधेराम एक कड़वी हँसी हँसकर बोला—'बैतुल माँझी को तो बिसेसर हाकिम ने घाट की बोली वाले दिन एक तरह से मार ही डाला !···अब चुनाव के पहले वाली रात को जो घर जलाये गये, उनमें चिरंजी-झालों का घर भी था। ये भी सैकड़ों हरिजनों की तरह बेघर हो गये। ये शहर जा रहे हैं···अब कभी गांव वापस नहीं आ सकेंगे···।"

"ओ !" निखिल सूखी हँसी हँसा।

"और···और···"

"बोलो राधेराम—"

"और···", राधेराम अब अपना मुंह एकदम निखिल के कान के पास ले आया—"आप अखबार में जरूर लिखिये—चुनाव के बाद एक रात कुछ गुंडे, गणेसी को पीटकर, जान से मार डालने का डर दिखा-कर, फुलवासिया को उठा ले गये। ···और आज उस मासूम की लाश गंगा में तैरती मिली··बड़ा जुलुम हुआ जवान फुलवसिया पर ! ·· सुना है बिसेसर हाकिम और···और·· "

"और कौन ?" निखिल व्यग्र था।

"और कौन-कौन लोग हैं इसके पीछे आप अंदाजा लगा लीजिये। हम कौन-कौन बड़े आदमी का नाम लें ?" चूल्हे के पास वापस जाता हुआ

राधेराम बोला--"हम गरीब लोग तो सड़क पर कुचले गये कीड़े-मकौड़े की तरह हैं। हमारा दुःख कौन जाने !!"

"गणेसी का क्या हुआ ?" एक लंबी चुप्पी से जुझते हुये निखिल ने पूछा।

'वह उस रात अंत तक लड़ा पर जब जान पर बन आयी तो भाग गया···।" जहाज घाट पर बैठे चिरंजी-झालो को देखता हुआ बोला— "सुना है उसे सख्त हिदायत दी गयी है—वह गाँव छोड़कर भाग जाये। अगर उसे गाँव में फिर देखा गया तो उसे जान से हाथ धोना पड़ेगा। पर लोग कहते हैं, वह बेचारा गांव में ही छुपा है। भाग नहीं सका अभी···।"

० ० ०

अगली सुबह जब अभी भोर का तारा खूब-खूब चमक रहा था, आसमान पर हल्की चांदनी थी और मायागंज के खेत-खमार को शिशिर की वूंदे निःशब्द धो रही थीं तब निखिल सामान हाथ में लेकर चुपचाप निकल पड़ा।

उसे कोई छोड़ने नहीं आया। न नरसिंह बाबू न कोई। अब इसका प्रश्न ही नहीं उठता था। उनकी जरूरतें पूरी हो चुकी थीं।

·· खेत की पगडंडी पर आधा उजाला आधा अंधेरे में चलता हुआ निखिल अचानक चौंक उठा। उसके पास से ही एक लंबा-तगड़ा जवान बड़ी तेजी से गुजरा, दौड़ते हुये—हाँफते हुये। फिर देखते-देखते वह आंखों से ओझल हो गया।

कौन था यह ? कहीं गणेसी तो नहीं ? निखिल को लगा, वह गणेसी ही था। ···हाँ, गणेसी ही भागकर जुल्म, अत्याचार, दीनता, गुलामी की सरहद से बाहर जा रहा था उसे अब कोई पकड़ नहीं सकेगा···न बिसेसर, न ठेकेदार, न नरसिंह बाबू और न उसका शासक—परदेसी। ·· और एक दिन वह फिर लौट आयेगा। अकेला नहीं। बहुत-बहुत गणेसियों के साथ। ·· एक तरंग की तरह, एक दावानल की तरह, एक भीषण, भयंकर, भयानक आंधी की तरह वे छा जायेंगे और उस बहाव में जंग लगा, भ्रष्ट और पतित यह समाज तिनके की तरह बिखर जायेगा। ·· निश्चिन्त हो जायेंगे बिसेसर, नरसिंह, ठेकेदार और परदेसी के गिरोह ···तब गणेसी और उनके साथी उस ध्वंसावशेष में ही एक नये समाज के निर्माण की नींव रखेंगे···

···जब गणेसी लौटेगा तब पथ पर उस जैसे कुचले गये असंख्य कीट-पतंगे जीवन्त हो उठेंगे और वे गणेसी के साथ मिलकर अपने कुचले जाने का हिसाब भी माँगेंगे।

143

Kho vis

bowko

Poraga.